।। श्री चौबीस तीर्थंकराय नमः।।

विशद

सुभाषित श्लोक - 4

प्रश्नोत्तर स्तोत्र - 48

रत्नाकर पञ्चविंशतिका - 58

सिद्धिप्रिय स्तोत्र - 69

श्री बाहुबली स्तोत्र - 83

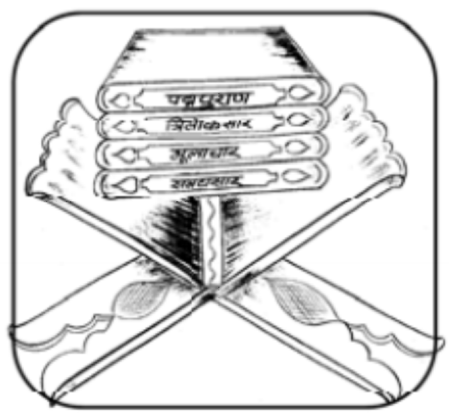

रचयिता : प.पू. क्षमामूर्ति 108 आचार्य विशदसागरजी महाराज

Created by Universal Document Converter

कृति - सुभाषित श्लोक

कृतिकार - प.पू. साहित्य रत्नाकर, क्षमामूर्ति
आचार्य श्री 108 विशदसागरजी महाराज

संस्करण - प्रथम-2022 ● प्रतियाँ :1000

संकलन - मुनि श्री 108 विशालसागरजी महाराज

सहयोग - ब्र. प्रदीप भैया (मो. 7568840873)

सहयोग - आर्यिका 105 श्री भक्तिभारती
क्षुल्लिका 105 श्री वात्सल्य भारती

संपादन - आस्था दीदी 9660996425

प्राप्ति स्थल - 1. सुरेश जी सेठी, पी-958, गली नं. 3,
शांति नगर, जयपुर मो. 9413336017

2. विशद साहित्य केन्द्र
रेवाड़ी (हरियाणा) प्रधान ● मो.: 09416882301

3. लाल मंदिर, चाँदनी चौक, दिल्ली
www.visadsagar.com app. visadsagarji

मूल्य - 51/- रु. मात्र

: अर्थ सौजन्य :

(1) श्री दिनेश कुमार जैन पुत्र स्व. श्री महेन्द्र कुमार जैन
सेठों का बाग, सरावगी मोहल्ला निमाज, तह. जैतारन, जिला-पाली (राज.)

(2) श्री नरेन्द्र कासलीवाल, रफीगंज, जिला-औरंगाबाद

(3) प्रेमलता काला स्व. चंदनमल जी काला, रफीगंज, जिला-औरंगाबाद

(4) राजकुमारी देवी काला स्व. शांतिलाल जी काला, रफीगंज, जिला-औरंगाबाद

मुद्रक : राजू ग्राफिक आर्ट (संदीप शाह), जयपुर ● फोन : 2313339, मो.: 9829050791

Created by Universal Document Converter

'विशद सिन्धु का विशाल चिन्तन'

दोहा– विशद सुभाषित पाठ कर, पाए सद् आचार।
सुख शांति मय हो सदा, जिससे यह संसार।।

इन्सान सुखी होने के लिए घर बदलता है, कपड़े बदलता है, गाड़ी बदलता है, दोस्त बदलता है, धनवान बनता है, शादी करता है, परिवार बसाता है, घूमने जाता है, अच्छा खाता–पीता है और भी पता नहीं क्या–क्या करता है। फिर भी वो सुखी नहीं हो पाता क्योंकि वो अपना स्वभाव नहीं बदलता। अगर इन्सान वक्त के हिसाब से अपने स्वभाव को, अपनी खराब आदतमों को बदल दे, कर्मोदय का सम्यक् चिन्तन कर सुभाषित बोले, समता भाव रखे तो अनायास ही अनेक संकटों का निवारण हो सकता है। प्रस्तुत सुभाषित श्लोक पुस्तक में सुखी जीवन का राज दिया है। यदि आप प्रत्येक काव्य को मनोयोग से पढ़ेंगे उसी अनुरूप जीवन को ढ़ालने का प्रयास करेंगे तो आप इस जीवन में भी अपार सुख–शांति का अनुभव कर सकते हैं।

परम पूज्य **आचार्य श्री विशदसागरजी ने** अपने गहन चिन्तन से सुभाषित श्लोकों का पद्यानुवाद कर श्रेष्ठ कार्य किया है।

''प्रश्नोत्तर रत्नमालिका, सिद्धिप्रिय स्तोत्र।
रत्नाकर पंचविंशतिः, विशद शांति के स्त्रोत।।''

प्रश्नोत्तर रत्नमालिका में प्रश्नोत्तर का समावेश अल्प शब्दों में किया है। सिद्धिप्रिय स्तोत्रम् में चौबीस तीर्थंकर का गुणानुवाद एवं रत्नाकर पञ्चविंशतिका में 25 श्लोकों के माध्यम से जीवन का सारभूत तत्व दिया गया है जिसे जीवन में उतारकर मानवदेह की सार्थकता सिद्ध की जा सकती है। आचार्यश्री द्वारा रचित सभी पद्यानुवादों का अर्थ सहित प्रस्तुत पुस्तक में समावेश है। आशा है यह कृति आपके लिए विशेष कार्यकारी होगी।

पुनः गुरु चरणों में शत्–शत् नमन।

–मुनि विशालसागर (संघस्थ)

Created by Universal Document Converter

कैसा मनुष्य जीवित व्यक्ति है

सम्यक्त्वेन समं वासो, नरकेऽपि वरं सताम्।
सम्यक्त्वेन विना नैव, निवासो राजते दिवि ।।1 ।।

दोहा– सम्यक्‌दर्शन से सहित, श्रेष्ठ है नरक निवास।
सोहे ना सम्यक्त्व बिन, 'विशद' स्वर्ग का वास ।।1 ।।

अर्थ– सत्पुरुषों का सम्यग्दर्शन के साथ नरक में निवास करना अच्छा है और सम्यक्त्व के बिना स्वर्ग में भी निवास शोभा नहीं देगा।

सम्यग्दर्शन का महत्त्व

त्यक्तप्राणं यथादेह, मृतक कथ्यते जनैः।
दृष्टिहीनो नरस्तद्वच्-चलन्-मृतक उच्यते ।।2 ।।

दोहा– मृतक कहाए प्राण से, विरहित होय शरीर।
सम्यक् दर्शन से रहित, मृतक कहाए धीर ।।2 ।।

अर्थ– जिस प्रकार प्राण रहित शरीर मृतक कहलाता है उसी प्रकार सम्यक्त्व से रहित मनुष्य चलता-फिरता मृतक कहलाता है अर्थात् असम्यग्दृष्टि है।

सम्यग्ज्ञान का लक्षण

तत्वबोध मनो-रोधः, श्रेयो रागात्म-शुद्धयः।
मैत्रीद्योतश्च येन स्युस्-तज्ज्ञानं जिनशासने ।।3 ।।

दोहा– आत्म शुद्धि रागात्म अरु, तत्वज्ञान मन रोध।
मैत्री का उद्योत है, जिन साधन का बोध ।।3 ।।

अर्थ– तत्वज्ञान, मन का निरोध, आत्महित का राग, आत्मशुद्धि और मित्रता का प्रकाश जिससे हो, वह जिनशासन में सम्यग्ज्ञान माना गया है।

ज्ञान क्या है ?

येनाक्ष विषयेभ्योऽत्र, विरज्य शिववर्त्मनि।
ज्ञानी प्रवर्तते नित्ये, तज्ज्ञानं जिनशासने ।।4 ।।

Created by Universal Document Converter

दोहा- इन्द्रिय विषयों से विरत, शिव पथ में लीन।
जिनशासन में ज्ञान वह, कहते ज्ञान प्रवीण ।।4 ।।

अर्थ- जिससे ज्ञानवान् पुरुष इन्द्रिय विषयों में विरक्त हो मोक्षमार्ग में निरन्तर प्रवृत्त रहता है, वह जिनशासन में ज्ञान माना गया है।

ज्ञानी और मूर्ख में दृष्टि भिन्नता

नष्टं मृतमतिक्रांत, नानुशोचन्ति पण्डिताः।
पण्डितानां च मूर्खानां, विशेषोऽयं यतः स्मृतः ।।5 ।।

दोहा- बीती बात मृत नष्ट में, ज्ञानी करें ना शोक।
ज्ञानी मूर्ख में भिन्नता, दृष्टि विशेष है योग ।।5 ।।

अर्थ- ज्ञानीजन नष्ट, मृत और बीती बात का शोक नहीं करते, क्योंकि ज्ञानी और मूर्खों में यही विशेष दृष्टि भिन्नता है।

श्रुत क्यों

श्रुतसंस्कृतं स्वमहसा, स्वतत्त्वमाप्नोति क्रमशः।
विहितोप्यपरिस्वङ्गः, शुद्धयति पयसा न किं वसनम् ।।6 ।।

दोहा- श्रुत संस्कारित चित्त से, आत्म तत्त्व हो प्राप्त।
मलिन वस्त्र क्या नीर से, शुद्ध होय ना ज्ञाप्त ।।6 ।।

अर्थ- श्रुत से संस्कारित मन क्रम से आत्म तेज के द्वारा आत्मतत्त्व को प्राप्त होता है। मलिन वस्त्र क्या जल से शुद्ध नहीं होता ? अर्थात् अवश्य होता है।

स्वाध्याय का महत्व

भावयुक्तोऽर्थतन्निष्ठः, सदा सूत्रं तु यः पठेत्।
स महानिर्जरार्थाय, कर्मणो वर्तते यतिः ।।7 ।।

दोहा- शुभ भावों युत जो मुनी, शास्त्र अर्थ में लीन।
पढ़ें शास्त्र वह कर्म को, कर देते हैं क्षीण ।।7 ।।

अर्थ- जो मुनि अच्छे भाव से युक्त होकर शास्त्र के अर्थ में तल्लीन होता हुआ शास्त्र को पढ़ता है, वह कर्म की बहुत अधिक निर्जरा करने के लिए समर्थ होता है।

Created by Universal Document Converter

परमार्थ

धर्मशास्त्र-श्रुतौ शश्वत, लालसं यस्य मानसम्।
परमार्थं स एवेह, सम्यग्जानाति नापरः ।।8।।

दोहा- धर्म शास्त्र के श्रवण में, होय लालसा वान।
मन जिसका परमार्थ वह, जाने अन्य ना आन।।8।।

अर्थ- जिसका मन धर्म शास्त्रों के सुनने में सदा लालसा युक्त रहता है वही इस जगत् में परमार्थ को अच्छी तरह जानता है अन्य नहीं।

शास्त्रों से सीख

अंतो णत्थि सुईणं, थोवो कालो वयं च दुम्मेहा।
तण्णवरि सिक्खिदव्वं, जं जम्ममरणरक्खयं कुणई।।9।।

दोहा- समय अल्प दुर्बुद्धी हम, नहीं शास्त्र का अंत।
जन्म मरण जो क्षय करे, सीखे वह हे संत।।9।।

अर्थ- शास्त्रों का अन्त नहीं है। समय अल्प है और हम दुर्बुद्धि हैं, इसलिए वह सीख लेना चाहिए जो जन्म मरण को क्षय कर दे।

वैराग्य का महत्व

वैराग्यात् स्वसुखं चैव, वैराग्याद् दुःखनासनम्।
वैराग्यात् काय-आरोग्यं, वैराग्याद् मोक्षजं सुखं।।10।।

दोहा- आतम सुख वैराग्य से, होवे दुःख का नाश।
हो निरोग वैराग्य से, करता मोक्ष प्रकाश।।10।।

अर्थ- वैराग्य से आत्म सुख काय प्राप्त होता है। वैराग्य से दुःख का नाश होता है। वैराग्य से शरीर में नीरोगता रहती है। वैराग्य से मोक्ष का सुख प्राप्त होता है।

सच्चारित्र क्या है ?

चेतसा वचसा तन्वा, कृतानुमतकारितेः।
पापक्रियाणां यस्त्यागः, सच्चारित्रशन्ति तत्।।11।।

Created by Universal Document Converter

दोहा- कृतकारित अनुमोदना, एवं मन वच काय।
पाप क्रियाओं को तजे, सच्चारित्र कहलाय ।।11 ।।

अर्थ- मन, वचन, काय तथा कृत, कारित, अनुमोदना से पाप-क्रियाओं का जो त्याग है, उसे ही सच्चारित कहते हैं।

चारित्र की महत्ता

वृतं यत्नेन संरक्षेत्, वित्तमायाति याति च।
अक्षीणो वित्ततः, क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ।।12 ।।

दोहा- चारित रक्षो यत्न से, धन तो आये जाय।
सुधन क्षीण ना क्षीण है, क्षीण चारित कहलाय ।।12 ।।

अर्थ- चारित्र की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। धन तो आता-जाता रहता है। इसीलिए कहा गया है कि जो धन से क्षीण दरिद्र, कमजोर है वह क्षीण नहीं है, जो चारित्र से क्षीण है वह सर्वथा क्षीण है।

तप का महत्त्व

पूजा कोटिसमं स्तोत्रं, स्तोत्रकोटिसमो जपः।
जप-कोटि समं ध्यानं, ध्यान-कोटि-समं तपः ।।13 ।।

दोहा- कोटि पूजा सम स्तोत्र है, कोटि स्तोत्र सम जाप।
ध्यान करोड़ों जाप सम, कोटि ध्यान सम ताप ।।13 ।।

अर्थ-स्तोत्र, करोड़ पूजाओं के समान है। जप-करोड़ स्तोत्रों के समान है। ध्यान, करोड़ों जपों के बराबर है और तप-करोड़ों ध्यानों के तुल्य है।

तपो मुक्तिपुरी गन्तुं, पाथेयं स्याद्धि पुष्कलम्।
मुक्तिनगरी वशीकर्तुं, तपो मन्त्रोऽङ्गिनां मतः ।।14 ।।

दोहा- मुक्तिपुरी का हेतु तप, जीवों को पाथेय।
मुक्ति वश करने के लिए, तप है मंत्र अजेय ।।14 ।।

अर्थ- मुक्तिनगरी को जाने के लिए तप प्राणियों का पूर्ण पाथेय (कलेऊ) संबल है तथा मुक्तिश्री को वश में करने के लिए तप मंत्र माना गया है।

Created by Universal Document Converter

ध्यान क्यों ?

जन्मलक्षार्जितं कर्म, ध्यानाभ्यासेन योगिनः।
तमः सूर्योदयेनैव, सर्वं नश्यति तत्क्षणम्।।15।।

दोहा– लाख जन्म के कर्म सब, करके ध्यानाभ्यास।
नश जाते हैं तिमिर समय, सूर्य का होय प्रकाश।।15।।

अर्थ– लाखों जन्मों में उपार्जित योगी के सब कर्म ध्यान के अभ्यास से उस तरह तत्काल नष्ट हो जाते हैं जिस तरह की सूर्योदय से सब अंधकार मिट जाता है।

आत्म-ध्यान का महत्त्व

नात्मध्यानात्परं सौख्यं, नात्मध्यानात्परं तपः।
नात्मध्यानात्परो मोक्ष-पन्थाः क्वापि कदाचन।।16।।

दोहा– आत्म ध्यान सम सुख नहीं, तप ना ध्यान समान।
आत्म ध्यान सम मोक्ष न, कहते जिन भगवान।।16।।

अर्थ– आत्मध्यान से बढ़कर सुख नहीं है, आत्म ध्यान से बढ़कर तप नहीं है तथा आत्मध्यान से बढ़कर कहीं कोई मोक्ष का मार्ग नहीं है।

मनुष्य जीवन की श्रेष्ठता

तृणानां शालयः श्रेष्ठाः, पादपानां च चन्दनः।
उपलानां च रत्नानि, भवानां मानुषो भवः।।17।।

दोहा– वृक्षों में चन्दन तथा, तृणों में जैसे धान्य।
श्रेष्ठ रत्न पाषाण में, मनुज जन्म है मान्य।।17।।

अर्थ– जिस प्रकार तृणों में धान्य (अन्न), वृक्षों में चन्दन और पाषाणों में रत्न श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सब जन्मों में मनुष्य जन्म श्रेष्ठ है।

सबका जन्म क्या है ?

अहिंसा सत्यमस्तेयमकाम-क्रोध-लोभता।
भूतप्रेम-हितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः।।18।।

Created by Universal Document Converter

दोहा– सत्य अहिंसा जीव हित, तजो चौर्य का कर्म।
प्रेम क्षमा ब्रह्मचर्य धर, सब वर्णों युत धर्म ।।18 ।।

अर्थ– अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, क्षमा, निर्लोभ, प्राणिमात्र से प्रेम और प्राणिमात्र के हित की चेष्टा यह सर्व वर्ण वालों का धर्म है।

धर्म ही जीवन है

अनित्यानि शरीराणि, विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः, कर्त्तव्यों धर्मसंग्रहः ।।19 ।।

दोहा– वैभव शाश्वत है नहीं, रहे ना नित्य शरीर।
मृत्यु निकट है जीव की, करो धर्म धर धीर ।।19 ।।

अर्थ– शरीर अनित्य है। वैभव स्थायी नहीं है। मृत्यु निकट है। अतः धर्म का संग्रह करना चाहिए।

वरं मुहूर्तमेकं च धर्मयुक्तस्य जीवनम् ।
तद्धीनस्य वृथा वर्ष-कोटिकोटी विशेषतः ।।20 ।।

दोहा– है मुहूर्त्त जीवन विशद, धर्म सहित जो होय।
कोटि वर्ष जीवन असद्, धर्म हीन नर खोय ।।20 ।।

अर्थ– धर्म सहित मनुष्य का एक मुहूर्त का जीवन अच्छा है। धर्म रहित (अधर्मी) मनुष्य का करोड़ों वर्ष का जीवन व्यर्थ है।

चत्वारः प्रहरा यान्ति देहिनां गृह-चेष्टितैः।
तेषां पादे तदर्धे वा कर्त्तव्यो धर्म-संग्रहः ।।21 ।।

दोहा– चार पहर गृहकार्य में, करे जीव व्यतीत।
चौथाई के अर्घ्य भी, करें धर्म से प्रीत ।।21 ।।

अर्थ– प्राणियों के चार पहर गृह कार्यों में व्यतीत होते हैं। उनके एक चौथाई अथवा उसके भी आधे समय में धर्म का संग्रह करना चाहिए अर्थात् धार्मिक कार्य करना चाहिए।

Created by Universal Document Converter

सुखितस्य दुःखितस्य च संसारे धर्म एवं त्वया कार्यः।
सुखितस्य तद्भिवृद्धयै दुःख-भुजस्तदुपधाताय।।22।।

दोहा- सुखी दुखी हर हाल में, करो धर्म हे जीव !।
धर्म दुःख के नाश को, सौख्य बढ़ाएँ अतीव।।22।।

अर्थ- संसार में यदि तू सुखी है अथवा दुःखी है तो दोनों अवस्थाओं में तुझे धर्म ही करना चाहिए। सुखी को सुख की वृद्धि के लिए और दुःखी को दुःख का विनाश करने के लिए धर्म करना है।

अशक्तस्यापराधेन किं धर्मो मलिनो भवेत्।
न हि भेके मृते जाता पयोधेः पूति गन्धता।।23।।

दोहा- मलिन धर्म अपराध से, क्या असमर्थ के होय।
ज्यों मेंढक के मरण से, मलिन ना सागर होय।।23।।

अर्थ- अशक्त, असमर्थ मनुष्य के अपराध से क्या धर्म मलिन होता है ? क्योंकि मेंढक के मर जाने से समुद्र में दुर्गन्धता नहीं होती।

जैनेन्द्र यो मतं लब्ध्वा नियमे तस्य तिष्ठति।
अशेषं किल्विषं दग्ध्वा सुस्थानं सोऽधिगच्छति।।24।।

दोहा- जिन दर्शन को प्राप्त कर, स्थिर नियम में होय।
पाप जलाकर जीव वह, शिवपद पावे सोय।।24।।

अर्थ- जो जैनदर्शन को प्राप्त कर उसके नियम में स्थित रहता है, वह समस्त पापों को जलाकर उत्तम स्थान को प्राप्त करता है।

जैनधर्म का लक्षण

स्याद्वादो विद्यते यत्र पक्षपातो न विद्यते।
अहिंसाया प्रधानत्वं जैनधर्मः स उच्चते।।25।।

दोहा- स्याद्वाद जिसमें रहा, पक्षपात ना कोय।
मुख्य अहिंसा है जहां, जैन धर्म वह होय।।25।।

Created by Universal Document Converter

अर्थ– जिसमें स्याद्वाद है, पक्षपात नहीं है और अहिंसा की प्रधानता है, वह जैन धर्म है।

जैनों की पहचान

जैनधर्मे तथा नीति मार्गे सद्भिः प्रकीर्तितम्।
जलानां गालनं धर्मः, प्रसिद्धो भुवनत्रये ।।26 ।।

दोहा– जल गालन जिन धर्म के, नीति मार्ग में जान।
है प्रसिद्ध त्रय लोक में, सज्जन कहते मान ।।26 ।।

अर्थ– सत्पुरुषों ने जैनधर्म के नीति मार्ग में ऐसा ही कहा है कि जल का छानना धर्म है। जल छानने की यह क्रिया तीनों लोकों में प्रसिद्ध है।

पिबन्ति गालितं तोयं, ते भव्याः विचक्षणाः।
अन्यथा पशुभिस्तुल्याः पापतो विकलाशयाः ।।27 ।।

दोहा– जल पीते हैं छानकर, भव्य जीव धीमान।
पाप विकल हृदयी मनुज, पशुवत गाए मान ।।27 ।।

अर्थ– जो छना हुआ जल पीते हैं वे जगत् में भव्य एवं बुद्धिमान हैं। अन्यथा पाप से विकल हृदय वाले मनुष्य पशुओं के तुल्य हैं।

दिन में ही भोजन क्यों

ह्रस्वायुर्वित्तयुक्तश्च व्याधिपीडितविग्रहः।
परत्र-सुखहीनः स्यान् नक्तं यः प्रत्यवस्यति ।।28 ।।

दोहा– रात्रि भोजी अल्प धन, अल्प आयु से युक्त।
रोगी देही होय वह, परभव में सौख्य विमुक्त ।।28 ।।

अर्थ– जो रात्रि में भोजन करता है वह अल्प आयु तथा अल्पधन से युक्त रोग से पीड़ित शरीर वाला और परभव में सुख से हीन होता है।

निशिभुक्तिरधर्मो यैर्धर्मत्वेन प्रकल्पितः।
पाप-कर्म-कठोराणां तेषां दुःखं प्रबोधनम् ।।29 ।।

Created by Universal Document Converter

दोहा– रात्रि भोजन धर्म जो, माने जग के जीव।
उन्हें समझना है कठिन, बाँधे पाप अतीव।।29।।

अर्थ– जिन लोगों ने रात्रि भोजन को धर्म मान रखा है उन मनुष्यों को समझना कठिन है।

सुखों की कुंजी

विवेक-सन्तोष-दया-क्षमाश्च, ज्ञानं, सुदानं विमदत्वमाद्यम्।
जितेन्द्रियत्वं विकषायता च सदा नराणां सुखदा भवन्ति।।30।।

दोहा– विमद विवेक दया क्षमा, ज्ञान दान सन्तोष।
निष्कषाय इन्द्रिय विजय, से हो मन में तोष।।30।।

अर्थ– विवेक, सन्तोष, दया, क्षमा, ज्ञान, शुभदान, निरहंकारता, जितेन्द्रियता और निष्कषायता ये गुण मनुष्यों को सुदा सुखदायक होते हैं।

ज्येष्ठत्वं जन्मना नैव गुणैर्ज्येष्ठत्वमुच्यते।
गुणाद् गुरुत्वमायाति दुग्धं दधि घृतं क्रमात्।।31।।

दोहा– ज्येष्ठ जन्म से है नहीं, गुण से नर सौख्यता पाय।
क्षीर दधी घृत में ज्यों, गौरव बढ़ता जाय।।31।।

अर्थ– ज्येष्ठ जन्म से नहीं होता, गुणों से कहा जाता है। गुणों से ही मनुष्य गौरव को प्राप्त होता है। जैसे दूध, दही और घी क्रम से गौरव को प्राप्त होते हैं।

गुणी मनुष्य

गुणिनि गुणज्ञो रमते नागुणशीलस्य गुणिनि संतोषः।
अलिरेति वनात्कमलं न दर्दुरस्त्वेकवासोऽपि।।32।।

दोहा– गुणी प्रेम गुणी से करें, निर्गुण में ना पाय।
मेंढक जाए पास ना, भौंरा वन से आय।।32।।

अर्थ– गुणों का जानकार गुण मनुष्य से प्रेम करता है। गुण रहित मनुष्य को गुणी मनुष्य से संतोष नहीं होता। भौंरा वन से कमल के पास आता है, परन्तु मेंढक एक तालाब में निवास करने पर भी कमल के पास नहीं जाता।

Created by Universal Document Converter

आत्म-प्रशंसा से हानि

परेण परिविख्यातो, निर्गुणोऽपि गुणी भवेत्।
शुक्रोऽपि लघुतां याति, स्वयं प्रख्यातितैर्गुणैः ।।33।।

दोहा- होय प्रशंसित ओर से, निर्गुण हो गुणवान।
स्वयं कहे गुण इन्द्र तो, लघुता पाए मान।।33।।

अर्थ- दूसरे के द्वारा प्रशंसा को प्राप्त हुआ निर्गुण मनुष्य भी गुणों को प्राप्त हो जाता है। दूसरे, स्वयं कहे हुए गुणों से इन्द्र भी लघुता को प्राप्त होता है।

दरिद्रता से मरण अच्छा

मृत-दुर्गतयोर्मध्ये मृतः शस्यो न दुर्गतः।
पूर्वो हि लभते वारि तद्बिन्दुमपि नोत्तरः ।।34।।

दोहा- प्रशंसनीय मृत दरिद्र में, मृत है दारिद नाहि।
मृत को जल देवे स्वजन, दारिद बूँद ना पाय।।34।।

अर्थ- मृत और दरिद्र के बीच मृत प्रशंसनीय है, दरिद्र नहीं। कवि कारण बताते हुए कहते हैं, कि मरे हुए आदमी को तो पानी प्राप्त होता है अर्थात् तर्पण के रूप में उसे कुटुम्बीजन पानी देते हैं, पर दरिद्र आदमी पानी की बूंद भी नहीं पाता। अर्थात् उसे कोई प्रेम से जल भी नहीं पिलाता।

बुद्धिमान् की कमी

जगत्यामति-मेधावी त्रयाणामेकमश्नुते ।
अल्पायुष्को दरिद्रो वा ह्यनपत्यो न संशयः ।।35।।

दोहा- तीन में इक अल्पायु या, दारिद्र हो सुतहीन।
संशय न बुद्धि मंत हो, कहते ज्ञान प्रवीण।।35।।

अर्थ- संसार में अत्यंत बुद्धिमान् मनुष्य तीन में एक को अवश्य प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं (1) वह अल्पायु होता है (2) दरिद्र होता है। (3) या संतानहीन होता है।

Created by Universal Document Converter

धर्म कार्यों में लोभ का दुष्परिणाम

कार्पण्यं नैव कर्त्तव्यं धर्म-कार्येषु निश्चयात्।
कार्पण्यजातदोषेण दरिद्रो जायते नरः।।36।।

दोहा- कृपण धर्म के कार्य में, ना हो लोभी जीव।
कंजूसी के दोष से, नियम से होय गरीब।।36।।

अर्थ- धार्मिक कार्यों में कंजूसी, लोभ नहीं करना चाहिए, क्योंकि कंजूसी के दोष से मनुष्य नियम से गरीब हो जाता है।

पण्डित कौन है ?

गुरुशुश्रुषया जन्म, चित्तं सद्ध्यान-चिन्तया।
धनोपयोगः सत्पात्रे, यस्य याति स पंडितः।।37।।

दोहा- गुरु सेवा में जन्म मन, चिन्त्ये सम्यक् ध्यान।
धनोपयोग सत् पात्र में, करें सो पण्डित जान।।37।।

अर्थ- जिसका जन्म गुरु की सेवा में, मन समीचीन ध्यान की चिन्ता में और धन का उपयोग सद्पात्र दान में जाता है, वह पंडित है।

पण्डित का लक्षण

अस्मच्छरीरमात्मान्यो ज्ञान-दर्शन-लक्षणः।
एवं जानाति यो नित्यं स एव पण्डितो मतः।।38।।

दोहा- ज्ञाता दृष्टा जीव मम, जुदी है मेरी देह।
ऐसा जाने वह रहा, पण्डित निःसन्देह।।38।।

अर्थ- हमारा शरीर जुदा है और ज्ञान और दर्शन लक्षण वाला आत्मा जुदा है ऐसा जो जानता है वह पण्डित माना जाता है।

विवेक का महत्व

मानुष्यं सत्कुले जन्म लक्ष्मीर्बुद्धिः कृतज्ञता।
विवेकेन बिना सर्वं सदप्येतन्न किञ्चन।।39।।

Created by Universal Document Converter

दोहा– लक्ष्मी बुद्धि कृतज्ञता, उत्तम कुल में जन्म।
बिन विवेक पाके सभी, व्यर्थ ना जाने मर्म।।39।।

अर्थ– मनुष्य का उत्तम कुल में जन्म, लक्ष्मी, बुद्धि तथा कृतज्ञता ये सब विवेक के बिना होते हुए भी कुछ नहीं है। अर्थात् विवेक से ही इनकी सार्थकता है।

विद्या-प्राप्ति के उपाय

गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा।
अथवा विद्यया विद्या चतुर्थेन न लभ्यते।।40।।

दोहा– विद्या गुरु सेवा किए, धन प्रतिभा से पाय।
विद्या पाने का विशद, और ना कोई उपाय।।40।।

अर्थ– विद्या गुरु सेवा से प्राप्त होती है अथवा बहुत धन से प्राप्त होती है अथवा अपनी प्रतिभा के उद्घाटन के द्वारा विद्या प्राप्त होती है। इनके अतिरिक्त चौथे उपाय से विद्या प्राप्त नहीं होती।

शस्त्र और शास्त्र विद्या में अन्तर

विद्याशस्त्रस्य शास्त्रस्य द्वे विधे प्रतिपत्तये।
आद्या हास्याय वृद्धत्वे द्वितीयाऽऽद्रियते सदा।।41।।

दोहा– शस्त्र शास्त्र विद्या विशद, ज्ञान के हेतू जान।
आदि हास्य वृद्धत्व में, द्वितिय आदर वान।।41।।

अर्थ– शस्त्र विद्या और शास्त्र विद्या ये दोनों विद्याएँ ज्ञान के लिए हैं। पर पहली शस्त्र विद्या वृद्धावस्था में हास्य के लिए होती है। दूसरी शास्त्र विद्या में हमेशा आदर को प्राप्त होता है।

भव से मुक्ति का मार्ग

सन्त्यत्र विविधा विद्या भव-भ्रमण-हेतवः।
सा विद्या दुर्लभा ज्ञेया या स्याद् भव-विभेदिनी।।42।।

Created by Universal Document Converter

दोहा– विद्याएँ भव भ्रमण की, कारण रहीं अनेक।
भव भेरी दुर्लभ कही, पाएँ कोई एक।।42।।

अर्थ– इस संसार में भव भ्रमण की कारणभूत अनेक विद्याएँ हैं। पर वह विद्या दुर्लभ जाननी चाहिए, जो संसार को भेदन करने वाली है। अर्थात् जन्म-जरा-मरण के दुःखों से छुटकारा शाश्वत सुख का मार्ग है।

सज्जन व्यक्ति का स्वभाव

उपकर्तुं प्रियं वक्तुं कर्त्तुं स्नेहमकृत्रिमम्।
सज्जनानां स्वभावोऽयं केनेन्दुः शिशिरीकृतः।।43।।

दोहा– प्रिय वचन उपकारता, अकृत्रिम स्नेह।
सज्जन के स्वभाव ये, शशि सम शीतल येह।।43।।

अर्थ– उपकार करना, प्रियवचन बोलना और अकृत्रिम स्नेह करना यह सज्जनों का स्वभाव है, जैसे चन्द्रमा को किसने शीतल किया? वह स्वभाव से ही शीतल है।

महापुरुष का लक्षण

प्रारम्भे सर्वकार्याणि विचार्याणि पुनः पुनः।
प्रारब्धस्य कार्य गमनं महापुरुष लक्षणम्।।44।।

दोहा– है विचार के योग सब, प्रारम्भिक जो काम।
पहुँचाएँ जो अन्त तक, महापुरुष वह मान।।44।।

अर्थ– प्रारम्भ के समय तो सभी कार्य विचार करने योग्य होते हैं, लेकिन प्रारम्भ किये हुए कार्य को अन्त तक ले जाना, पूर्ण कर लेना महापुरुष का लक्षण है।

णिवदि विहूणं खेत्तं, णिवदि वा जत्थ दुट्ठओ होज्ज।
पव्वज्ज च ण ख्वभदि, संजम घादे व तं वज्जो।।45।।

दोहा– राजा बिन हो क्षेत्र या, दुष्ट क्षेत्र का भूप।
संयम घाती क्षेत्र में, तजे जो होय अनूप।।45।।

Created by Universal Document Converter

अर्थ– राजा विहीन क्षेत्र अथवा दुष्ट राजा का क्षेत्र त्याग दें जहाँ प्रवज्या न बने जहाँ संयम घात हो उस क्षेत्र को त्याग दें।

सज्जन का उदात्त एवं अविकारी व्यक्तित्व

सुजनो न याति विकृतिं परहित-निरतो विनाशकालेऽपि।
छेदेऽपि चन्दन-तरुः सुरभयति मुखं कुठारस्य।।46।।

दोहा– पर हितकारी सुजन ना, लाए कभी विकार।
मुख सुगन्ध चन्दन करे, काँटे तरु कुठार।।46।।

अर्थ– परहित या परोपकार में तत्पर रहने वाले सज्जन व्यक्ति विनाश काल में भी विकारों को प्राप्त नहीं होते। जैसे कि चन्दन का वृक्ष काटे जाने पर भी कुल्हाड़ी के मुख को सुगंधित करता है।

सज्जनों का सत्कार

आनन्दमेदुरादृष्टिर्मनः प्रीतितरङ्गितम् ।
सतामेतावदौचित्यं शेषस्त्वाचारविस्तारः।।47।।

दोहा– हर्ष दृष्टि प्रीति सहित, सज्जन का सत्कार।
उचित कहा मन से विशद, शेष है शिष्टाचार।।47।।

अर्थ– हर्ष से परिपूर्ण दृष्टि और प्रीति से लहराता मन, सज्जनों को इतना ही सत्कार उचित जान पड़ता है। शेष कार्य तो शिष्टाचार का विस्तार है।

कलियुग में सज्जनों की दुर्लभता

कृते प्रतिगृहे सन्तस्त्रेतायां प्रतिपाटकम्।
द्वापरे ग्राम-मध्ये को देशेऽप्येकः कलौ युगे।।48।।

दोहा– कृत युग में घर घर रहो, त्रेता रहो मुहाल।
सज्जन द्वापर ग्राम में, देश में है कलिकाल।।48।।

अर्थ– कृत युग में घर-घर में सज्जन होते थे। त्रेता युग में मोहल्ले में एक द्वापर में ग्राम में एक और कलियुग में एक सज्जन होता है।

Created by Universal Document Converter

दुर्जन का लक्षण

नविना परिवादेन रमते दुर्जनो जनः ।
श्वानः सर्वरसान् भुक्त्वा बिना मेध्यं न तृप्तति ।।49 ।।

दोहा- दुर्जन निन्दा में रमे, उसमें हो संतुष्ट ।
ज्यों कूकर सब छोड़ रस, विष्टा में हो पुष्ट ।।49 ।।

अर्थ- दुर्जन मनुष्य निन्दा के बिना नहीं रमता, वह निन्दा रस में आनन्द का अनुभव करता है। जैसे कुत्ता सब रसों को खाकर भी विष्ठा के बिना संतुष्ट नहीं होता।

दुर्जन को धर्म का उपदेश अशान्ति का कारण

धर्म कृच्चोपदेशोऽहो दुष्टानां शान्तये न वे ।
वर्धते तेन कोपाग्निः सर्पाणां दुग्धपानवत् ।।50 ।।

दोहा- आश्चर्य दुर्जन शांति को, होय न धर्मोपदेश।
दूध पिलाए सर्प विष, गुस्सा बढ़े विशेष ।।50 ।।

अर्थ- आश्चर्य है कि धर्म का उपदेश भी दुर्जनों की शांति के लिए नहीं होता, उससे उनकी क्रोधाग्नि (गुस्सा) ही बढ़ती है। जैसे दूध पिलाने से सांपों का विष ही बढ़ता है।

दुर्जनों का उचित उपाय

खलानां कण्टाकानां च द्विविधैव प्रतिक्रिया।
उपानह-मुख भङ्गो वा दूरतो वा विवर्जनम् ।।51 ।।

दोहा- दुर्जन काँटों का सदा, दो प्रकार प्रतिकार।
जूते से मुख भंग कर, छोड़े भली प्रकार ।।51 ।।

अर्थ- दुर्जनों और काँटों का प्रतिकार (उचित उपाय) दो प्रकार से ही होता है। या तो जूते के द्वारा उनका मुख भंग कर दिया जावे या उन्हें दूर से छोड़ दिया जाये।

Created by Universal Document Converter

हित, मित और प्रिय वाक्य का महत्व

प्रियवाक्य प्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति मानवाः।
तस्मात् तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता।।52।।

दोहा– मानव हो संतुष्ट सब, प्रिय वचन को पाय।
क्या दारिद्रता वचन में, प्रिय ही वचन सुनाय।।52।।

अर्थ– प्रियवचन बोलने से सब मनुष्य संतुष्ट होते हैं अतः वही बोलना चाहिए। वचन में दरिद्रता क्या है अर्थात् हित–मित और प्रिय वचन बोलना हमारा कर्त्तव्य है।

उत्तम वचन के लक्षण

विमर्शपूर्वकं स्वास्थ्यं स्थापकं हेतु संयुतम्।
स्तोकं कार्यकरं स्वादु निर्गर्वं निपुणं वदेत्।।53।।

दोहा– अल्प कार्यकारी मधुर, स्वस्थ चतुर बिन मान।
कर विचार निर्णय सहित, वचन कहें विद्वान।।53।।

अर्थ– विद्वानों को विचारपूर्वक स्वास्थ्यवर्धक निर्णायक हेतु सहित अल्प कार्यकारी मधुर, गर्व रहित और चातुर्य पूर्ण वचन बोलना चाहिए।

समदर्शी बनें

प्रिये गते विषादं न कुर्वन्ति नागतेमुदम्।
सन्तो महापुराणज्ञा इदं हि धिषणा-फलम्।।54।।

दोहा– ज्ञानी करें विषाद ना, प्रिय वस्तु को जाय।
हर्ष करें ना प्राप्त कर, बुद्धी का फल पाय।।54।।

अर्थ– महागुणों के ज्ञाता सत्पुरुषप्रिय पदार्थ के चले जाने पर विवाद नहीं करते हैं और आ जाने पर हर्ष नहीं करते। बुद्धि का यही फल है।

ज्ञानी कौन

कषायवान् शत्रुवत् पश्येत्, विषयान् विषवत्तथा।
मोहं च परमं व्याधिमेव मर्त्यो विचक्षणः।।55।।

Created by Universal Document Converter

दोहा– विषयों को विष सम मानते, माने शत्रु कषाय।
मोह रोग मार्ने बड़ा, ज्ञानी वह कहलाय।।55।।

अर्थ– ज्ञानी पुरुष कषायों को शत्रु के समान, विषयों को विषम के समान और मोह को उत्कृष्ट बड़ी बीमारी के समान देखता है।

जैन धर्म का ज्ञान और जीव-समूह की रक्षा

बोधयनमलबोध-शालिनो ये जनं जिनमतं महामतिम्।
सत्वसार्थमखिल महीतले लीलयेव परिपालयन्ति तं।।56।।

दोहा– बुद्धिमान ज्ञानी मनुष्य शुभ, जैन धर्म का पाए ज्ञान।
जीव समूह की रक्षाकारी, भूतल पर होवे धीमान।।56।।

अर्थ– निर्मल ज्ञान से सुशोभित जो मनुष्य बुद्धिमान मनुष्य को जैन धर्म का ज्ञान कराते हैं वे समस्त पृथ्वी तल पर अनायास ही जीव-समूह की रक्षा करते हैं।

शास्त्र ज्ञान की शोभा आत्मज्ञान से

शास्त्रज्ञानस्य संशोभा भवेदात्म-सुबोधनः।
तदभावे वृथा भारः पुंसां पाषाण-सन्निभः।।57।।

दोहा– आत्म ज्ञान से शास्त्र भी शोभे, शास्त्र ज्ञान बिन सब है हीन।
पुरुष रहे पत्थर समान ही, व्यर्थ भार धारे जो दीन।।57।।

अर्थ– शास्त्र ज्ञान की शोभा आत्मज्ञान से होती है। शास्त्र-ज्ञान के अभाव में पुरुषों को पाषाण के समान व्यर्थ का भार ही माना गया है।

उत्तम सेवक का महत्व

न यज्वानोऽपि गच्छन्ति, तां गतिं नैव योगिनः।
यां यान्ति प्रोज्झितप्राणाः स्वाम्यर्थं सेवकोत्तमाः।।58।।

दोहा– स्वामी हेतू जो प्राण विसर्जन, कारी उत्तम गति में जाय।
उस गति को याज्ञिक योगी भी, ना कभी प्राप्त कर पाय।।58।।

Created by Universal Document Converter

अर्थ– स्वामी के लिए प्राण विसर्जन करने वाले उत्तम सेवक जिस गति को प्राप्त होते हैं उस गति को न तो यज्ञ करने वाले प्राप्त होते हैं और न योगी।

सभा में कैसे और कहाँ बैठना ?

कुर्यात् पर्यास्तिकां नेव, नैव पदा-प्रसारणम्।
न निद्रां विकथां नापि, सभायां कुक्रियां न च ।।59।।

दोहा– विकथा पाद प्रसारण एवं, खोटी क्रिया शयन परित्याग।
इधर उधर न सभा में बैठे, तजे कुचेष्टाओं से राग ।।59।।

अर्थ– सभा में न इधर-उधर बैठक करना चाहिए, सभा में न पैर पसारना चाहिए, सभा में न सोना चाहिए और न ही विकथा करनी चाहिए और न कोई खोटी क्रिया करनी चाहिए।

नात्यासन्नो न दूरस्थो न समोच्चासनस्थितः।
न पुरःस्थो न पृष्ठस्थस्तिष्ठेत् सदसि तु प्रभोः ।।60।।

दोहा– स्वामी के अत्यन्त निकट न, दूर ना आगे-पीछे जान।
उच्चासन या होय बराबर, सभा की मर्यादा यह मान ।।60।।

अर्थ– सभा में स्वामी के न अत्यंत निकट बैठना चाहिए न दूर बैठना चाहिए न बराबरी से अथवा ऊँचे आसन पर बैठना चाहिए, न आगे बैठना चाहिए और न पीछे बैठना चाहिए।

मौन का महत्व

मौनमभिमान-शरणं चित्करणं पुण्यकरणमधहरणम्।
देवादिवश्यकरणं क्रुधहरणं चित्तशुद्धि सुखकरणम् ।।61।।

दोहा– क्रोध मान हर पाप हर, चित्त शुद्धि सुखकार।
चित्त कारक देवादि वश, मौन मुख्य कर्त्तार ।।61।।

अर्थ– मौन अभिमान का रक्षक है, चित्त को एकाग्र करने का साधन है, पुण्य को करने वाला है। पाप को हरने वाला है। देवादि को वश में करने वाला है। क्रोध को हरने वाला है। चित्त की शुद्धि और सुख को करने वाला है।

Created by Universal Document Converter

जिनोक्तिरेव वक्तव्या वक्तव्या नेतरोक्तयः।
तच्छिष्टवाक् स्मृतिमौनं न मौनं पशुवत्परम्।।62।।

दोहा– बोले आगम के वचन, अन्य ना बोले कोय।
जिन वच स्मृति मौन है, पशुवत मौन ना होय।।62।।

अर्थ– जिनवाणी को ही कहना चाहिए, अन्य रागद्वेष वचन नहीं कहने चाहिए अतः जिनेन्द्र प्रतिपादित वचनों का स्मरण करना मौन है। पशु के समान मौन रहना मौन नहीं है।

भोजने वमने स्नाने मैथुने मल-मोचने।
सामायिक जिनर्चायां वा गृहिणां मौन-सप्तकम्।।63।।

दोहा– सामायिक भोजन वमन, मलोत्सर्ग स्नान।
पूजन मैथुन गृहस्थ के, मौन के सात स्थान।।63।।

अर्थ– भोजन, वमन, स्नान, मैथुन, मलोत्सर्ग, सामायिक और जिनपूजा गृहस्थों के ये सात मौन के स्थान हैं।

भ्रामर्या च मल-त्यागे भोजने वमने यथा।
आवश्यके तथा लोचे यतीनां प्राण-संकटे।।64।।

दोहा– भ्रामरि वृत्ति वमन में, मल त्याग आहार।
षडावश्यक लौंच में, रखे मौन अनगार।।64।।

अर्थ– जैसे भ्रामरीवृत्ति चर्या के लिए जाते समय, मल-त्याग, आहार, वमन उल्टी के समय मौन रहता है, उसी प्रकार षट् आवश्यक लोच तथा मृत्यु के समय मुनियों को मौन रखना चाहिए।

मौनाद् भोजनवेलायां ज्ञानस्य विनयो भवेत्।
रक्षणं चाभिमानस्य दिशन्त्येतन्मुनीश्वराः।।65।।

दोहा– मौन से भोजन जो करे, उनके ज्ञानाभिमान।
विनय की रक्षा हो विशद, कहते जिन भगवान।।65।।

Created by Universal Document Converter

अर्थ– भोजन के समय मौन रखने से ज्ञान की विनय तथा अभिमान की रक्षा होती है। यही मुनीश्वर कहते हैं।

संतोषो भाव्यते तेन, वैराग्यं तेन दृश्यते।
संयमः पोष्यते तेन, मौनं येन विधीयते।।66।।

दोहा– मौन धारते जीव जो, प्रगटावे सन्तोष।
धारे मन वैराग्य वे, व्रत पाले निर्दोष।।66।।

अर्थ– जिसके द्वारा मौन रखा जाता है उसके द्वारा सन्तोष प्रकट किया जाता है वैराग्य दिखाई देता है और संयम का पोषण किया जाता है।

सागारोऽपि जनो येन प्राप्नोति यति-संयमम्।
मौनस्य तस्य शक्यन्ते केन वर्णयितुं गुणाः।।67।।

दोहा– गृहि जिसके द्वारा करे, संयम मुनि सम प्राप्त।
मौन गुण को कह सके, वह तो जाने आप्त।।67।।

अर्थ– जिसके गृहस्थ भी मुनि जैसे संयम को प्राप्त कर लेता है उसे मौन का गुण किसके द्वारा कहा जा सकता है अर्थात् किसी के द्वारा नहीं।

मौनव्रतफलादत्र नरो नारी सुखी भवेत्।
नरोऽमुत्रापवर्गं च पुंसत्वं प्राप्नोति योषिता।।68।।

दोहा– नर नारी इस जन्म में, सुखी होय यह जान।
परभव में नर मोक्ष और, स्त्री पुरुषत्व वान।।68।।

अर्थ– मौन व्रत के फल से नर–नारी इस जन्म में सुखी होते हैं नर परभव में मोक्ष को तथा स्त्री पुरुषत्व को प्राप्त होती है।

चिन्ता कष्टदायिनी

चिन्ता चिता समाख्याता बिन्दु मात्र विशेषता।
चिता दहति निर्जीवं चिन्ता जीवं दहत्यहो।।69।।

Created by Universal Document Converter

दोहा– चिंता चिता समान है, बिन्दू रहा विशेष।
चिंता से जीवित जले, चिता जलाए शेष।।69।।

अर्थ– चिन्ता और चिता समान कही गयी है। दोनों में बिन्दु मात्र की विशेषता है। चिता प्राण रहित अर्थात् मृत मनुष्य को जलाती है और चिन्ता सजीव मनुष्य को जलाती है।

तरुणस्य काम चिन्ता मध्यमवयसोऽस्य भवति धन चिन्ता।
वृद्धस्य मरणचिन्ताऽप्यनेकचिन्ता दरिद्रस्य।।70।।

दोहा– तरुण काम चिंता करे, प्रौढ़ को धन की होय।
मृत्यु चिंता वृद्ध को, दारिद्र को सब ही होय।।70।।

अर्थ– तरुण मनुष्य को काम की चिन्ता है। प्रौढ़ावस्था में मनुष्य को धन की चिन्ता है। बूढ़े को मरने की चिन्ता और दरिद्र मनुष्य को अनेक प्रकार की चिन्ताएँ सताती हैं।

उत्तमा स्वात्मचिन्ता स्याद् देह चिन्ता च मध्यमा।
अधमा कामचिन्ता स्यात् परचिन्ताऽधमाधमा।।71।।

दोहा– उत्तम चिंता आत्म की, मध्यम पर की जान।
अधम काम चिंता विशद, अधमाधम पर मान।।71।।

अर्थ– अपनी आत्मा संबंधी चिन्ता उत्तम है। शरीर संबंधी चिन्ता मध्यम है। काम-भोग संबंधी चिन्ता अधम है और दूसरों की चिन्ता अधमाधम सर्वथा निन्दनीय है।

आत्म स्वरूप का चिन्तवन

नाहं कश्चित् न मे किञ्चित् शुद्ध-चिद्रूपकं विना।
तस्मादन्यत्र मे चिन्ता वृथा तत्र लयं भजे।।72।।

दोहा– शिवा शुद्ध चिद्रूप के, मेरा कुछ ना कोय।
अतः व्यर्थ चिंता सभी, चेतन में लय होय।।72।।

Created by Universal Document Converter

अर्थ– मैं किसी का कोई नहीं हूँ। शुद्ध चैतन्य स्वरूप के सिवाय अन्य कुछ भी मेरा नहीं है। इसलिए मेरी अन्य पदार्थ विषयक चिन्ता व्यर्थ है। मैं तो उसी शुद्ध चैतन्य रूप में लय को प्राप्त होऊँ यही ध्यान करना चाहिए।

श्रावक कौन ?

देवशास्त्रगुरूणां च भक्तिर्दानं दयार्चनम्।
मदाष्टव्यसनैर्हीनः श्रावकः कथितो जिनैः ।।73।।

दोहा– **दया दान पूजन करें, सप्त व्यसन मद हीन।**
देव-शास्त्र-गुरु भक्ति में, श्रावक रहता लीन।।73।।

अर्थ– जिसके देव, शास्त्र और गुरु की भक्ति, दान, दया और पूजन है तथा जो आठ मद और सात व्यसनों से रहित है उसे जैनधर्म में श्रावक कहा है।

अन्धा कौन ?

अन्धास्त एव लोकेऽस्मिन्, विश्व-तत्व-प्रकाशकम्।
ज्ञाननेत्रं न येः प्राप्तं गुरोरन्ते शिवप्रदम्।।74।।

दोहा– **तत्त्व प्रकाशी जीव जो, गुरु से पाए ना ज्ञान।**
अन्धे वे इस लोक में, कहते जिन भगवान।।74।।

अर्थ– इस लोक में अन्धे वे ही मनुष्य हैं, जिन्होंने गुरु के पास सभी तत्त्वों को प्रकाशित करने वाला कल्याणदायक नेत्र नहीं प्राप्त किया है।

कामी क्रोधी तथा लोभी, मद्यपो व्यसनातुरः।
एते सम्यक् न पश्यन्ति प्रत्यक्षेऽपि दिवाकरे।।75।।

दोहा– **व्यसनी मद्य पायी तथा, काम क्रोध धर लोभ।**
देखें ना प्रत्यक्ष वे, पा रवि का उद्योत।।75।।

अर्थ– कामी, क्रोधी, लोभी, शराबी और व्यसनों से दुःखी मनुष्य, सूर्य के प्रत्यक्ष रहते हुए भी नहीं देखता है। अर्थात् वह एक प्रकार से अन्धा है।

Created by Universal Document Converter

दिगम्बरत्व

संतोषं लोभनाशाय, धृतिं च सुखशान्तये।
ज्ञानं सुतपसो वृद्धयै धारयन्ति दिगम्बराः ।।76।।

दोहा- लोभ नाश को धारते, मुनि संतोष महान।
सुख शांती को धैर्य शुभ, तप वृद्धी को ज्ञान ।।76।।

अर्थ- दिगम्बर साधु लोभ का नाश करने के लिए संतोष को, सुख-शांति प्राप्ति के लिए धैर्य को और उत्तम तप की वृद्धि के लिए ज्ञान को धारण करते हैं।

गुरु और साधु का गुरुत्व

गुरुर्विधाता गुरुदेव दाता, गुरुः स्वबन्धुर्गुण-रत्नसिधुः।
गुरुर्विनेता गुरुरेव तातो, गुरुर्विमोक्षो हतकर्मपक्षः ।।77।।

दोहा- गुरु विधाता पिता गुरु, गुण रत्नों के सिन्धु।
कर्म विनाशक मोक्ष गुरु, गुरु शिक्षक गुरु बन्धु ।।77।।

अर्थ- गुरु ही विधाता, भाग्य निर्माता है, गुरु ही दाता है गुरु ही स्वकीय बन्धु है, गुरु ही गुणरूपी रत्नों के सागर हैं। गुरु ही शिक्षक हैं, गुरु ही पिता है और कर्म-समूह को नष्ट करने वाला गुरु ही मोक्ष है।

संचितं यद् गृहस्थेन पापमामरणान्तिकम्।
तत् सर्वं निर्दहत्येव ह्योक-रात्र्युषितो यतिः ।।78।।

दोहा- मरण काल तक गृही के, संचित हो जो पाप।
एक रात्रि दीक्षित मुनि, के जल जाए ताप ।।78।।

अर्थ- गृहस्थ के द्वारा मरण-पर्यन्त जो पाप संचित किया जाता है उस पाप को एक रात्रि का दीक्षित साधु नियम से भस्म कर देता है।

लोहस्तरति काष्ठाभिः सहितोऽगाधमर्णवम्।
गुरुपदेशतो मूढः पारं याति भवाम्बुधेः।।79।।

Created by Universal Document Converter

दोहा– काठ की नौका लोह को, सिन्धु कराए पार।
मूढ़ सुगुरु उपदेश पा, पार पाए संसार।।79।।

अर्थ– काष्ठ निर्मित नौका से सहित लोहा जिस प्रकार अगाध समुद्र को पार कर जाता है, उसी प्रकार मूर्ख मनुष्य भी गुरु के उपदेश के द्वारा भवसागर के पार को प्राप्त हो जाता है।

चित्रेऽपि लिखितो लिङ्गी वन्दनीयो विपश्चिताम्।
निश्चेताः किं पुनश्चित्तं दधानो जिनशासनम्।।80।।

दोहा– विद्वानों से पूज्य है, चित्रांकित मुनिराज।
जिनशासन में साधु फिर, चेतन की क्या बात।।80।।

अर्थ– चित्र में अंकित अचेतन साधु भी विद्वानों का वंदनीय होता है, फिर जिन शासन को धारण करने वाले चेतन साधु की क्या बात है।

साधवो जङ्गम-तीर्थं स्वात्मज्ञानं च साधवः।
साधवो देवता मूर्त साधुभ्यः साधु नापरम्।।81।।

दोहा– चलते फिरते तीर्थ मुनि, करते स्वातम ज्ञान।
मूर्ति धारि है देव मुनि, अन्य ना कोई आन।।81।।

अर्थ– साधु चलते-फिरते तीर्थ हैं। साधु स्वात्मज्ञान है। साधु मूर्तिधारी देवता हैं। साधु से बढ़कर कोई दूसरा नहीं है।

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
तीर्थं फलति कालेन सद्यः साधु समागमः।।82।।

दोहा– दर्श पुण्य से साधु का, तीर्थ भूत मुनिराज।
समय पाय फल तीर्थ का, साधु समागम आज।।82।।

अर्थ– साधुओं का दर्शन पुण्य है क्योंकि साधु तीर्थ स्वरूप हैं अर्थात् तीर्थ तो समय पाकर फल देता है, पर साधु का समागम शीघ्र ही फल देता है।

गंगापापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा।
पापं तापं च तैन्यं च हन्ति साधु समागमः।।83।।

Created by Universal Document Converter

दोहा– गंगा पाप संताप रवि, दीन भाव सुर वृक्ष।
पाप ताप हर दीनता, साधु समागम सर्व।।83।।

अर्थ– गंगा पाप को, चन्द्रमा सन्ताप को और कल्पवृक्ष दीनता को नष्ट करता है, परन्तु साधु का समागम पाप, सन्ताप और दैन्य तीनों को नष्ट करता है।

दान और उसका फल

सद्दृष्टिः पात्र-दानेन लभते नाकिनां पद्म।
ततो नरेन्द्रतां प्राप्य लभते पदमक्षयम्।।84।।

दोहा– सम्यक्त्वी शुभ दान दे, स्वर्ग सुपद कर प्राप्त।
आके पाए राज्य पद, फिर पद पाए आप्त।।84।।

अर्थ– सम्यग्दृष्टि मनुष्य पात्र को दान देने से स्वर्ग को प्राप्त करता है। वहाँ से आकर राज्य पद को प्राप्त कर अक्षय मोक्ष पद को प्राप्त करता है।

योजनं श्रूयते बेरी, मेघो द्वादशयोजनम्।
दातुश्च दानशब्दो हि श्रूयते सचराचरे।।85।।

दोहा– भेरी इक योजन सुने, बारह योजन मेघ।
दान चराचर लोक में, सुनो सभी अवशेष।।85।।

अर्थ– भेरी का एक शब्द एक योजन तक और मेघ का बारह योजन (20 किलोमीटर) तक सुनाई देता है। पर दाता के दान का शब्द सम्पूर्ण चर-अचर लोक में सुनाई पड़ता है।

उपार्जितानां वित्तानां दानमेव हि रक्षणम्।
तडागोदर-संस्थानां परिवाह इवाम्भसाम्।।86।।

दोहा– रक्षा को ज्यों ताल की, जल प्रवाह हो जान।
धन रक्षा को त्यों करे, थोड़ा-थोड़ा दान।।86।।

अर्थ– जिस प्रकार तालाब के भीतर स्थित जल की रक्षा के लिए प्रवाह के द्वारा थोड़ा-थोड़ा निकालते रहना आवश्यक है उसी प्रकार संचित धन की रक्षा के लिए दान देते रहना आवश्यक है।

Created by Universal Document Converter

आगम धर्म के मार्ग का स्रोत

आलोकेन बिना लोको, मार्ग नालोकते यथा।
बिना आगमेन धर्मार्थी धर्मध्वानं जनस्तथा।।87।।

दोहा– ज्यों प्रकाश बिन मार्ग को, देख सके न कोय।
त्यों आगम बिन ना दिखे, धर्म मार्ग भी सोय।।87।।

अर्थ– जिस प्रकार मनुष्य प्रकाश के बिना मार्ग को नहीं देखता है, उसी प्रकार धर्मार्थी मनुष्य आगम के बिना धर्म के मार्ग को नहीं देखता है।

सुख-दाता कौन ?

सत्यं माता, पिता ज्ञानं, धर्मो भ्राता दया सखी।
शान्तिः पत्नी क्षमा पुत्रः, षडेव ममः सौख्यदाः।।88।।

दोहा– भ्रात धर्म सखि है दया, मात सत्य पित ज्ञान।
शांति पत्नि सुत है क्षमा, छह सुख दायी मान।।88।।

अर्थ– सत्य माता, ज्ञान पिता, धर्म भाई, दया सखी, शान्ति पत्नी और क्षमा पुत्र यह छह ही मुझे सुख देने वाले हैं।

विद्वान कौन ?

के विद्रांसोऽत्र ये ज्ञात्वाऽऽगमं पापं चरन्ति न।
दुराचारं च दुर्मार्गं ते विदःस्युः, शठाः परे।।89।।

दोहा– विद्वान आगम जानकर, दुराचार तज पाप।
तजे कुमार ज्ञानी विशद, अन्य मूर्ख सब आप।।89।।

अर्थ– यहाँ विद्वान् कौन है ? जो आगम को जानकर पाप, दुराचार और दुर्मार्ग का आचरण नहीं करते हैं वे विद्वान् हैं, अन्य मूर्ख हैं।

मूर्ख कौन ?

के मूर्खा ये परिज्ञाय ज्ञानं मुञ्चन्ति जातु न।
विषयासक्तिः मेनच ते जडाः स्युः परे न च।।90।।

Created by Universal Document Converter

दोहा- मूर्ख कौन जो जानकर, विषयाशक्ती पाप।
छोड़ नहीं पावें विशद, मूर्ख रहे वे आप।।90।।

अर्थ- मूर्ख कौन है ? जो ज्ञान को जानकर भी विषयासक्ति और पाप को नहीं छोड़ते हैं वे मूर्ख है अन्य नहीं।

जिनेन्द्र दर्शन शाश्वत सुख का कारण

श्री मुखालोकनादेव श्रीमुखालोकनं भवेत्।
आलोकनविहीनस्य तत्सुखावाप्तयः कृतः।।91।।

दोहा- जिन मुख दर्शन से मिले, मुक्तिश्री का दर्श।
दर्श रहित जो हैं मनुज, कैसे पाए हर्ष।।91।।

अर्थ- जिनेन्द्र का मुख देखने से ही मुक्ति रूपी लक्ष्मी के मुख का दर्शन होता है। जो मनुष्य दर्शन से रहित है, उसे सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

जिनेन्द्र की महिमा अपार है

ज्ञायते न यथा संख्या ह्यूर्मीणां सागरे घने।
वार्धाराः खाङ्गणे तारास्तथा श्रीजिनसद्गुणाः।।92।।

दोहा- सागर में लहरें तथा, मेघ में ज्यों जलधार।
अनगिनत तारें गगन में, जिन गुण ज्यों शुभकार।।92।।

अर्थ- जैसे समुद्र में लहरों की संख्या, मेघ में जल धाराएँ और आकाश रूपी आंगन में तारे नहीं जाने जाते हैं वैसे ही श्री जिनेन्द्रदेव के गुण नहीं जाने जाते।

वृद्ध की सेवा का फल

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते ह्यायुर्विद्या यशोबलम्।।93।।

दोहा- सतत् वृद्ध सेवा तथा, अभिवादन कर जीव।
विद्या बल यश आयु ये, बढ़ते विशद अतीव।।93।।

अर्थ- निरन्तर वृद्धजनों की सेवा और अभिवादन करने वाले मनुष्य की आयु, विद्या, यश और बल ये चार वस्तुएँ वृद्धि को प्राप्त होती हैं।

Created by Universal Document Converter

स्तोत्र का महत्त्व

स्तोत्र-मन्त्र-माहात्म्येन, चान्तरस्थाधराशयः।
सकलास्रव-क्षयं यान्ति, मंत्रात्सर्पर्षि यथा ।।94।।

दोहा- सर्प का विष ज्यों मन्त्र से, होवे शीघ्र विनाश।
स्तोत्र रूपी मन्त्र से, पाप सर्व हो नाश ।।94।।

अर्थ- जिस प्रकार मंत्र से सर्प का विष नष्ट हो जाता है उसी प्रकार स्तोत्र रूपी मंत्र से भीतर स्थित पापों के समस्त समूह नष्ट हो जाते हैं।

मोक्ष प्राप्ति का उपाय

यथा शिल्पी जिनागारं कुर्वन्नूर्ध्वं शनैर्व्रजेत्।
तथा तत्कारको धीमान् स मोक्षं धर्मयोगतः ।।95।।

दोहा- निर्माता जिन गेह का, ऊपर ऊपर जाय।
त्यों जिन गृह निर्माण कर, मोक्ष महापद पाय ।।95।।

अर्थ- जिस प्रकार मंदिर बनाने वाला कारीगर धीरे-धीरे ऊपर की ओर जाता है उसी प्रकार मंदिर को बनाने वाला मनुष्य धर्म के निमित्त से क्रमशः मोक्ष को प्राप्त होता है।

पूजा क्रमशः मोक्ष का कारण

यः करोति जिनेन्द्राणां पूजनं स्नपनं नरः।
स पूजामाप्य निःशेषां लभते शाश्वतीं श्रियस् ।।96।।

दोहा- जिन पूजन अभिषेक कर, पूर्ण प्रतिष्ठा पाय।
शाश्वत मुक्ति लक्ष्मी विशद, उसे ही परणाय ।।96।।

अर्थ- जो मनुष्य जिनेन्द्र भगवान का पूजन और अभिषेक करता है, वह पूजा प्रतिष्ठा को प्राप्त कर अविनाशी मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त होता है।

अहिंसा सर्वकल्याणकारी है

यत् स्यात् प्रमादयोगेन प्राणिषु प्राणघातनम्।
सा हिंसा, रक्षणं तेषामहिंसा तु सतां मता ।।97।।

Created by Universal Document Converter

दोहा– **हिंसा प्राणी घात है, जो प्रमाद से होय।**
धर्म अहिंसा वह रहा, रक्षा करता कोय।।97।।

अर्थ– प्रमादयोग से प्राणियों का प्राणघात करना हिंसा है। उनकी रक्षा करना सत्पुरुषों ने अहिंसा मानी है।

किनृत्वहिंसैव भूतानां मातेव हितकारिणी।
तथा रमयितुं कान्ता विनेतुं च सरस्वती।।98।।

दोहा– **हिंसा दुखकर मात सम, हितू अहिंसा जान।**
रमण हेतु स्त्री विशद, सरस्वती दे ज्ञान।।98।।

अर्थ– हिंसा दुःख का कारण है किन्तु अहिंसा ही माता के समान प्राणियों का हित करने वाली है। अहिंसा रमण–प्रसन्न करने के लिए स्त्री और शिक्षा देने के लिए सरस्वती है।

तपः श्रुत यम ज्ञान ध्यान दानादि–कर्मणाम्।
सत्य शील व्रतादीनामहिंसा जननी मता।।99।।

दोहा– **ज्ञान ध्यान तप दान व्रत, श्रुत संयम या शील।**
मात अहिंसा जानिए, सबकी विशद सुशील।।99।।

अर्थ– तप, शास्त्र, संयम, ज्ञान, ध्यान तथा दान आदि कर्म और सत्य शील तथा व्रत आदि की माता अहिंसा मानी गई है।

यस्य जीवदया नास्ति तस्य सच्चरितं कदा।
न हि भूतद्रुहां कापि क्रिया श्रेयस्वामी भवेत्।।100।।

दोहा– **जीव दया जिसमें नहीं, सच्चारित ना होय।**
क्रिया जीव द्रोही करें, वह हितकर ना सोय।।100।।

अर्थ– जिसमें जीव दया नहीं है, उसमें सम्यक्चारित्र कैसे हो सकता है, क्योंकि जीव द्रोही लोगों की कोई क्रिया कल्याणकारी नहीं होती।

Created by Universal Document Converter

दान की महत्ता

संसारे मानुषं सारं, कौलीन्यं चापि मानुषे।
कौलीन्ये धार्मिकत्वं च धार्मिकत्वं च सद्दया।।101।।

दोहा– सारभूत पर्याय नर, नर हो उच्च कुलीन।
धार्मिकता सम्यक दया, सारभूत गुणलीन।।101।।

अर्थ– संसार में मनुष्यपर्याय सारभूत है। मनुष्य पर्याय में उच्च कुलता सारभूत है तथा धार्मिकता में समीचीन दया सारभूत है।

इष्टो यथात्मनो देहः सर्वेषां प्राणिनां तथा।
एवं ज्ञात्वा सदा कार्या दयाऽसु-धारिणमपि।।102।।

दोहा– ज्यों तन अपना इष्ट है, प्राण इष्ट त्यों जान।
ऐसा जान के जीव हे !, दया करो गुणवान।।102।।

अर्थ– जिस प्रकार अपना शरीर अपने लिए इष्ट है, उसी प्रकार सभी प्राणियों के लिए अपने प्राण प्यारे हैं। ऐसा जानकर संसार के सब प्राणियों पर दया करनी चाहिए।

झूठ बोलने के कुफल

मूकता मतिवैकल्यं मूर्खतां बोध विच्युतिः।
बधिरत्वं मुखरोगित्वमसत्यादेव देहिनाम्।।103।।

दोहा– ज्ञान शून्यता मूर्खता, मूक बधिर मुख रोग।
हो असत्य भाषी विशद, पावें इनका योग।।103।।

अर्थ– गूंगापन, बुद्धिरहित मूर्खता, ज्ञानशून्यता, बहरापन और मुख सम्बन्धी रोग असत्य भाषण (झूठ बोलने) से ही प्राणियों को प्राप्त होते हैं।

सत्य बोलने का महत्व एवं फल

सत्यवाक् सत्यसामर्थ्याद् वचः सिद्धिं समश्नुते।
वाणी चास्य भवेन्मान्या यत्र यत्रोपजायते।।104।।

Created by Universal Document Converter

दोहा– वचन सिद्धि वाक्य से, सतवादी के होय।
वाणी की हो मान्यता, शब्द कहे जो कोय ।।104 ।।

अर्थ– सत्यवादी मनुष्य सत्य के सामर्थ्य से वचन सिद्धि को प्राप्त होता है। वह जहाँ–जहाँ है वहाँ–वहाँ उसकी बात (वाणी) मान्य होती है। सच मानी जाती है।

तत्सत्यमपि नो वाच्यं यत्स्यात्परविपत्तये।
जायन्ते येन वा स्वस्य व्यापदप्रद दुरासदा ।।105 ।।

दोहा– सत्य वह ना बोले कभी, पर आपत्ती वान।
स्व आपद कारी वचन, कहें कभी ना जान ।।105 ।।

अर्थ– वह सत्य भी नहीं बोलना चाहिए जो दूसरों की विपत्ति के लिए हो अथवा अपने आपको बहुत भारी आपदाएँ उत्पन्न हों।

सत्यं प्रियं हितं चाहुः सूनृतं सूनृतव्रताः।
तत्सत्यमपि नो सत्यमप्रियं चाहितं च यत् ।।106 ।।

दोहा– हितकर सत्य प्रिय वचनों को, सुनृत कहते हैं सत्वान।
सत्य भी वह है नहीं सत्य जो, अहितकार हो अप्रिय जान ।।106 ।।

अर्थ– सत्यव्रत के धारी मनुष्य सत्य, प्रिय और हितकारी वचन को सुनृत कहते हैं। वह सत्य भी सत्य नहीं है जो अप्रिय और अहितकारी हो।

सत्यमेव वदेत् प्राज्ञः सर्वभूतोपकारकम्।
यद्वा तिष्ठेत् समालम्ब्य मौनं सर्वार्थसाधकम् ।।107 ।।

दोहा– पर उपकारी सत्य नर, बोलें जो धी मान।
सर्व प्रयोजन सिद्ध कर, मौन रखे यह मान ।।107 ।।

अर्थ– बुद्धिमान् मनुष्य को जीवों पर उपकारक सत्य ही बोलना चाहिए अथवा सब प्रयोजनों को सिद्ध करने वाला मौन लेकर बैठ जाना चाहिए।

स्वयमेव समायान्ति सम्पदः सत्यवादिनाम्।
किं चित्रं यद्र्यदायान्ति हंसाः पद्माकरं वनम् ।।108 ।।

Created by Universal Document Converter

दोहा– स्वयं प्राप्त धन हो विशद, सतवादी हो जान।
जाय कमल वन हंस तो, क्या आश्चर्य है मान।।108।।

अर्थ– सत्य बोलने वालों को धन स्वयं प्राप्त होता है। यदि हंस कमल वन के पास जाते हैं तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है।

चोरी और उसका फल

अदत्तस्य परस्वस्य ग्रहणं स्तेयमुच्यते ।
सर्वभोग्यात्तदन्यत्र भावात् तोय-तृणादितः ।।109।।

दोहा– बिना दिया पर धन ग्रहण, चोरी जो कहलाय।
निज उपयोगी नीर तृण, छोड़ न अन्य लहाय।।109।।

अर्थ– बिना दिये हुए दूसरों के धन को ग्रहण करना चोरी कहलाती है। वह चोरी उसके उपभोग में आने वाले जल और घास को छोड़कर अन्य पदार्थों में लेना चाहिए।

निवसन्ति वन्दि-गेहे वस्त्रालङ्कारवर्जिताः पुरुषाः।
परधनहरणनियोगाद् द्वयलोके दुःख-भोक्तारः ।।110।।

दोहा– चोरी के अपराध से, बन्दी ग्रह में जाय।
वस्त्राभूषण से रहित, उभय लोक दुख पाय।।110।।

अर्थ– चोरी के अपराध से मनुष्य वस्त्राभूषण से रहित हो बंदीगृह में रहते हैं तथा दोनों लोकों में दुःख भोगते हैं।

अचौर्यव्रत का प्रतिफल

रत्न - रत्नाङ्ग - रत्नस्त्री - रत्नाम्बरविभूतयः।
भवन्त्या चिन्तितास्तेषामस्तेयं येषु निर्मलम् ।।111।।

दोहा– व्रताचौर्य निर्दोष युत, बिन चिन्ता के जान।
होय श्रेष्ठ स्त्री वसन, रत्न विभूती वान।।111।।

अर्थ– जिन पुरुषों में निर्दोष अचौर्यव्रत है, उन्हें बिना चिन्ता किये ही रत्न, श्रेष्ठ शरीर, श्रेष्ठ स्त्री और श्रेष्ठ वस्त्र रूप विभूतियाँ प्राप्त होती हैं।

Created by Universal Document Converter

शील का महत्त्व

जलति ज्वलनः वार्ब्धिः स्थलो, श्वान-केसरी।
पुष्पमालायते सर्पः स्त्री-पुंसां शीलधारिणाम्।।112।।

दोहा– शीलवान को अग्नि जल, सिंह हो श्वान समान।
पुरुष माल सम नाग हो, अतिशय महिमा वान।।112।।

अर्थ– शीलधारी स्त्री–पुरुषों के लिए अग्नि, समुद्र स्थल के समान, सिंह श्वान के समान और साँप फूलों की माला के समान आचरण करने वाला है।

ब्रह्मचर्य व्रत का महत्व

सर्वव्रतच्युतं ह्येकं श्याध्यं ब्रह्मव्रतं भुवि।
तद् विना न च सम्पुंसां सर्वःव्रत-समुच्चयः।।113।।

दोहा– सर्व व्रतों से रहित इक, ब्रह्मचर्य व्रत श्रेष्ठ।
सत्पुरुषों को विनय यह, व्रत हो सब अश्रेष्ठ।।113।।

अर्थ– पृथ्वी पर सब व्रतों से रहित एक ब्रह्मचर्य व्रत प्रशंसनीय है। इसके बिना सत्पुरुषों का समस्त व्रतों का समूह भी प्रशंसनीय नहीं होता।

वृद्ध कौन

तपः श्रुत - धृति - ध्यान - विवेकयमसंयमैः।
ये वृद्धास्तेऽत्र प्रशस्यन्ते न पुनः पलिताङ्कुरैः।।114।।

दोहा– तप श्रुत धैर्य विवेक यम, संयम ज्ञानी वृद्ध।
है प्रशंसनीय अन्य ना, श्वेत बाल से वृद्ध।।114।।

अर्थ– जो तप, शास्त्र ज्ञान, धैर्य, ध्यान विवेक, यम और संयम के द्वारा वृद्ध हैं वे प्रशंसनीय हैं न कि सिर्फ सफेद बालों से वृद्ध प्रशंसनीय है।

वृद्धों की सेवा से लाभ

साक्षाद् वृद्धानुसेवेयं मातेव हितकारिणी।
त्रिनेत्री वागिवाप्तानां दीपिकेवार्थदर्शिनी।।115।।

Created by Universal Document Converter

दोहा- माता सम हितकारिणी, जिनवाणी सम ज्ञान।
वस्तू दर्शक दीप समय, वृद्ध सेवा है मान ।।115 ।।

अर्थ- यह वृद्ध सेवा साक्षात् माता के समान हितकारिणी है, आप्त भगवान की वाणी के समान शिक्षा देने वाली है और दीपिका के समान पदार्थों को दिखाने वाली है।

वृद्धानुजीविनामेव स्युः चारित्रादि संपदः।
भवत्यपि च निर्लेपं मनः क्रोधादि कल्मषम् ।।116 ।।

दोहा- चारित् आदिक सम्पदा, वृद्ध की संगति वान।
मलिन चित्त क्रोधादि से, निर्मल होय यह जान ।।116 ।।

अर्थ- वृद्ध मनुष्यों की संगति करने वालों के ही चारित्र आदि सम्पदाएँ होती हैं और उन्हीं का क्रोध आदि कषायों से मलिन चित्त निर्मल होता है।

कुर्वन्नपि तपस्तीव्रं, विदन्नपि श्रुतार्णवम्।
नासादयति कल्याणं, चेद् वृद्धावमन्यते ।।117 ।।

दोहा- अवमानी हो वृद्ध का, तप कर कठिन महान।
ज्ञाता शास्त्र समुद्र का, पाय नहीं कल्याण ।।117 ।।

अर्थ- जो वृद्ध जनों की अवहेलना करता है, वह कठिन तप करता हुआ भी और शास्त्र-समुद्र को जानता हुआ भी कल्याण को प्राप्त नहीं होता है।

महात्माओं की संगति

मनोऽभिमत - निःशेष - फल - संपादन - क्षमम्।
कल्पवृक्ष इवोदारं साहचर्यमहात्मनाम् ।।118 ।।

दोहा- महात्माओं की संगती, मनचाहा फल देय।
है उदार सु वृक्ष सम, जानो निःसन्देह ।।118 ।।

अर्थ- महात्माओं की संगति मन चाहे समस्त फलों की प्राप्ति करने में समर्थ कल्पवृक्ष के समान उदार है।

Created by Universal Document Converter

साधु संगति का महत्व

चंदनं शीतलं लोके चंदनादपि चन्द्रमाः।
चन्द्र चन्दनयोर्मध्ये शीतला साधुसंगतिः ।।119।।

दोहा- चन्दन शीतल लोक में, उससे शीतल चंद।
इससे शीतल है विशद, संगति साधु आनन्द ।।119।।

अर्थ- लोक में चंदन शीतल है और चन्द्रमा चंदन से भी अधिक शीतल है। पर चन्द्रमा और चंदन में साधु की संगति अधिक शीतल है।

सत्सङ्गो यदि लब्धः पुण्यफलैः पोषणीय एवासौ।
पथि पथि सुलभा वृक्षाः कल्पतरुर्लभ्यते न सर्वत्र ।।120।।

दोहा- प्राप्त होय सत्संग तो, करें पुण्य से पुष्ट।
वृक्ष सुलभ हर मार्ग में, सुरतरु करे सुपुष्ट ।।120।।

अर्थ- यदि सत्संग प्राप्त हुआ है तो उसे पुण्यरूप फलों के द्वारा पुष्ट करना चाहिए, क्योंकि सामान्य वृक्ष तो प्रत्येक मार्ग में सुलभ हैं, परन्तु कल्पवृक्ष सब समय और सब जगह नहीं मिलते।

परिग्रह का दोष

नागवोऽपि गुणालोके दोषाः शैलेन्द्र-सन्निभाः।
भवन्त्यत्र न सन्देहः सङ्गमासाद्य देहिनाम् ।।121।।

दोहा- अणु रूप गुण तो नहीं, है जो परिग्रह वान।
दोष सुमेरु सम रहे, ना सन्देह पिछान ।।121।।

अर्थ- लोक में परिग्रह प्राप्त कर मनुष्यों के गुण तो अणुरूप भी नहीं होते, पर दोष सुमेरु के समान होते हैं। इसमें संदेह नहीं है।

यः सङ्गपङ्क - निर्मग्नोऽप्यपवर्गाय चेष्टते।
समूढः पुष्पनाराचैर्विभिन्द्यात् त्रिदशाचलम् ।।122।।

दोहा- परिग्रह कीचड़ में खचे, चाहे मोक्ष निधान।
पुष्प बाण से मेरु का, भेद न होय यह मान ।।122।।

Created by Universal Document Converter

अर्थ– परिग्रह रूपी कीचड़ में खचकर भी जो मोक्ष के लिए चेष्टा करता है, वह मूर्ख फूल के बाणों से सुमेरु को भेदना चाहता है।

उन्मूलयति निर्वेदं विवेक दुममञ्जरीम्।
प्रत्यासत्ति समायातः सतामपि परिग्रहः।।123।।

दोहा– सत्पुरुषों के पास भी, आय परिग्रह कोय।
बुद्धि विराग तरु की नशे, पुष्प मंजरी सोय।।123।।

अर्थ– सत्पुरुषों के भी निकट आया हुआ परिग्रह, वैराग्य और विवेक रूपी वृक्ष की मंजरी (पुष्प संतति) को नष्ट कर देता है।

ब्राह्यानपि च यः सङ्गान् परित्यक्तुमनीश्वरः।
स क्लीवः कर्मणां सैन्यं कथमग्र हनिष्यति।।124।।

दोहा– बाह्य परिग्रह त्याग में, शक्तिहीन असमर्थ।
कर्म सेन्य के घात में, कैसे होय समर्थ।।124।।

अर्थ– जो शक्ति हीन मनुष्य बाह्य परिग्रह को भी छोड़ने में असमर्थ है वह आगे कर्मों की सेना का घात किस प्रकार करेगा ? अर्थात् नहीं कर सकेगा।

सन्तोषी सदा सुखी

सन्तोष-पीयूष रसावसिक्त चित्तस्य पुंसोऽत्र यदस्ति सौख्यम्।
सन्तोषहीनस्य न कौशिकस्य न वासुदेवस्य न चक्रिणस्तत्।।125।।

दोहा– सन्तोषी को होय सुख, चक्री नारायण इन्द्र।
हों संतोष विहीन ये, पाए नहीं अहमिन्द्र।।125।।

अर्थ– संतोष रूपी जल से अभिषिक्त चित्तवाले पुरुष को जहाँ जो सुख होता है, वह न संतोष रहित इन्द्र को प्राप्त होता है, न नारायण को प्राप्त होता है और न चक्रवर्ती को प्राप्त होता है।

माँगना अच्छा नहीं

तीक्ष्णधारेण खड्गेन वरं जिह्वा द्विधा कृता।
न तु मानं परित्यज्य देहि देहीति जल्पनम्।।126।।

Created by Universal Document Converter

दोहा- **तीक्ष्ण खड्ग से जीभ का, खण्डन उत्तम जान।**
किन्तु मान तज माँगना, रहा ना श्रेष्ठ महान।।126।।

अर्थ- तीक्ष्ण धारवाली तलवार से जिह्वा के दो खंड कर लेना अच्छा है, परन्तु मान छोड़कर देहि-देहि देओ-देओ कहना यह अच्छा नहीं है।

धनोपार्जन साद्देश्य हो

दानायोपार्ज्यते वित्तं भोगाय च गृहाश्रमें।
यस्य नास्ति तयोर्भावस्तस्यार्थोपार्जनं वृथा।।127।।

दोहा- **धन अर्जन करते गृही, दान भोग को खास।**
नहीं होय परिणाम यह, फिर क्यों धन की आस।।127।।

अर्थ- गृहस्थ लोग दान के लिए अथवा भोग के लिए धन का उपार्जन करते हैं। जिसको दान और भोग का भाव परिणाम नहीं है, उसका धनोपार्जन करना व्यर्थ है।

अन्याय से कमाया धन नष्ट होता है

अन्यायोपार्जितं वित्तं दशवर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्तेत्वेकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति।।128।।

दोहा- **धन अर्जन अन्याय से, करे रहे दश वर्ष।**
सर्व नाश हो ग्यारहवे, अतः न्याय कर हर्ष।।128।।

अर्थ- अन्याय से कमाया हुआ धन दस वर्ष तक ठहरता है। ग्यारहवां वर्ष आने पर समूल नष्ट हो जाता है। अतः न्याय से धन कमाना उपयुक्त है उत्कोच से नहीं।

सफल मनुष्य कौन ?

वरपूजया जिनानां, धर्म-श्रवणेन, सुगुरुसेवनया।
शासनं भासनं योगैः सृजन्ति सफलं निजं जन्म।।129।।

Created by Universal Document Converter

दोहा– धर्म श्रवण पूजा विशद, जिन गुरु सेवा अन्य।
जिनशासन उद्योत से, जीवन होवे धन्य।।129।।

अर्थ– जो जिनेन्द्रदेव की उत्कृष्ट पूजा से, धर्म श्रवण से, सुगुरुओं की सेवा से और जिनशासन की प्रभावना से अपना जीवन सफल करते हैं, वे धन्य हैं।

जीवन के फल

देव-पूजा दया-दानं तीर्थयात्रा-जपस्तपः।
श्रुतं परोपकारत्वं मर्त्य - जन्म फलाष्टकम्।।130।।

दोहा– जिन पूजा जप तप दया, धर्म श्रवण कर दान।
तीर्थयात्रा उपकार पर, जीवन के फल मान।।130।।

अर्थ– देवपूजा, दया, दान, तीर्थयात्रा, जप–तप, शास्त्र–श्रवण और परोपकार ये मनुष्य जीवन के आठ फल हैं।

तृष्णा का अन्त नहीं

पलितैकदर्शनादपि सरति सतां चित्तमाशु वैराग्यम्।
प्रतिदिनमितोरस्य पुनः सह जरया वर्द्धते तृष्णा।।131।।

दोहा– श्वेत बाल इक देख के, सज्जन चित्त विराग।
असत वृद्ध तृष्णा करें, मन में अतिशय राग।।131।।

अर्थ– एक सफेद बाल देखने से सत्पुरुष का चित्त शीघ्र ही वैराग्य को प्राप्त हो जाता है, परन्तु असत् पुरुष की तृष्णा बुढ़ापे के साथ प्रतिदिन बढ़ती रहती है।

सफल कौन

जातस्य नदीतीरे तस्य तृणस्यापि जन्म साफल्यम्।
यत्सलिल-मज्जनाकुलजन हस्तावलम्बनं भवति।।132।।

दोहा– तृण का जीवन है सफल, सरिता तट पर होय।
डूब रहे व्याकुलित को, बने सहारा कोय।।132।।

अर्थ– नदी तट पर उत्पन्न हुए उस तृण का भी जीवन सफल है जो पानी की डूब से व्याकुल मनुष्य के हाथ का अवलम्बन (सहारा) होता है।

Created by Universal Document Converter

इनका नाम व्यर्थ है

जिह्वादग्धा परान्नेन हस्तो दग्धः प्रतिग्रहैः।
मनोदग्धं परस्त्रीभिर्गतं जन्म निरर्थकम्।।133।।

दोहा- जीभ जले पर अन्न से, पर वस्तू से हाथ।
पर स्त्री से मन जले, जन्म व्यर्थ वह साथ।।133।।

अर्थ- जिसकी जीभ दूसरे के अन्न से जली है, जिसके हाथ दूसरे की वस्तु को प्राप्ति करने से जले हैं और जिसका मन परस्त्री से जला है, उसका जन्म निरर्थक है।

मुनि को दान का फल

समर्थोऽपि न यो दद्याद् यतीनां दानमादरात्।
छिनत्ति स स्वयं मूढः परत्र सुखमात्मनः।।34।।

दोहा- जो समर्थ मुनि को नहीं, आदर से दे दान।
परभव में सुख को स्वयं, छेद रहा यह मान।।134।।

अर्थ- जो समर्थ होकर भी मुनि के लिए आदरपूर्वक दान नहीं देता है, वह मूर्ख परभव में अपने सुख को स्वयं छेदता है, नष्ट करता है।

धर्मात्मा की संगति का फल

स एवं दिवसः श्लाघ्यः सा वेला सुखदायिनी।
धर्मिणां सङ्गमो यत्र, शेषं जन्म निरर्थकम्।।135।।

दोहा- श्रेष्ठ दिवस सुखकर समय, हो धर्मी सत्संग।
शेष निरर्थक जन्म यह, विशद होय यह भंग।।135।।

अर्थ- वही दिन प्रशंसनीय है और वही समय सुखदायक है जिसमें धर्मात्मा जनों का संगम होता है शेष जन्म निरर्थक है।

धन की महत्ता

लक्ष्मीः कुरङ्गरूपेण दूरं - दूरं पलायते।
दातृव्याधभयाद् भीता कृपणारण्य-संश्रिता।।136।।

Created by Universal Document Converter

दोहा– मृगा रूप धर के श्री, दूर–दूर तक जाय।
डर से दाता व्याघ के, कृपण वनी में राय।।136।।

अर्थ– लक्ष्मी मृग का रूप रखकर दूर–दूर तक भागती है दातारूपी शिकारी के भय से डरकर वह कृपणरूपी जंगल के आश्रय में रहती है।

न्यायोपात्त धन की महत्ता

न्यायेनोपार्ज्यते यच्च तदल्पमपि भूरिशः।
बिन्दुशोऽप्यमृतं साधु क्षाराब्धेर्वारिसंचयात्।।137।।

दोहा– न्यायोपार्जित अल्प धन, बहुत कहा यह श्रेष्ठ।
लवण सिन्धु जल से मधु, एक बूँद है श्रेष्ठ।।137।।

अर्थ– न्याय से कमाया हुआ धन थोड़ा भी बहुत माना जाता है, क्योंकि लवण समुद्र के जल की अपेक्षा अमृत की एक बूँद भी श्रेष्ठ होती है।

कंजूस का लक्षण

न दातुं नोपभोक्तुं च शक्नोति कृपणः श्रियः।
किन्तु स्पृशति हस्तेन नपुंसक इव स्त्रियम्।।138।।

दोहा– दान भोग ना कर कृपण, करता है स्पर्श।
षांढ स्त्रि के भोग बिन, छू के माने हर्ष।।138।।

अर्थ– कंजूस आदमी लक्ष्मी को न देने में समर्थ है और न भोगने में किन्तु वह हाथ से उसका स्पर्श करता है। जैसे कि नपुंसक मनुष्य केवल हाथ से स्त्री का स्पर्श करता है, उसे भोग नहीं सकता।

कृपणेन समो दाता न भूतो न भविष्यति।
अस्पृशन्नेव वित्तानि यः परेभ्यः प्रयच्छति।।139।।

दोहा– हुआ नहीं होगा नहीं, दाता कृपण समान।
छुए बिना धन ओर को, देता है जो दान।।139।।

अर्थ– कृपण के समान दाता न हुआ है, न होगा, जो धन को छुए बिना ही दूसरों के लिए दे देता है।

Created by Universal Document Converter

जैनी दीक्षा का अधिकारी कौन ?

बोधिलाभाच्च वैराग्यात् काललब्ध्यादि-संश्रयात्।
जैनी दीक्षां द्विजः संप्राप्तुमर्हति ।।140 ।।

दोहा- काल लब्धि वैराग्यता, बोधि लाभ के हेतु।
द्विज दीक्षा धर जैन की, पाए शिव का सेतु ।।140 ।।

अर्थ- बोधि, लाभ, वैराग्य तथा काललब्धि आदि के निमित्त से द्विज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, उत्तम संस्कारों से युक्त जैनी दीक्षा को प्राप्त करने के योग्य हैं।

वैभव का उपभोग करें

दातव्यं भोक्तव्यं सति विभवे संचयो न कर्त्तव्यः।
पश्येह मधुकरीणां संचितमर्थं हरन्त्यन्ये ।।141 ।।

दोहा- धन पा संचित ना करें, भोगे या दे दान।
संचित मधु को अन्य कोई, गृहण करें कर आन ।।141 ।।

अर्थ- यदि वैभव है तो उसे भक्ति भाव से देना चाहिए और भोगना चाहिए, संचित नहीं करना चाहिए क्योंकि देखो इस जगत् में मधुमक्खियों के संचित धन को दूसरे लोग हर लेते हैं।

मृत्यु अटल है

नोपायो विद्यते कोऽपि न भूतो न भविष्यति।
निर्वार्यते यमो येन प्रवृत्तः प्राणिचर्वणे ।।142 ।।

दोहा- ऐसा नहीं उपाय था, होगा ना है आज।
प्राणी चर्वण में प्रवृत्त, रुक जाए यमराज ।।142 ।।

अर्थ- ऐसा कोई उपाय नहीं है, न था और न होगा, जिससे प्राणियों के चर्वण करने में प्रवृत्त यमराज को रोका जा सके।

मृत कौन ?

जीवन्तोऽपि मृताः पञ्च श्रूयन्ते सकलागमे।
दरिद्रो व्याधितो मूर्खः प्रवासी नित्यसेवकः ।।143 ।।

Created by Universal Document Converter

दोहा– सेवक मूर्ख चरिद्र सज, जाये कोई परदेश।
शास्त्रों में पाँचों कहे, जीवित मृतक विशेष।।143।।

अर्थ– समस्त शास्त्रों में पाँच प्राणी जीवित रहते हुए भी मृत सुने जाते हैं। वे पाँच हैं– 1. दरिद्र, 2. बीमार, 3. मूर्ख, 4. परदेश – गमन करने वाला और 5. नित्य परसेवा नौकरी करने वाला।

धर्म धारण तुरन्त करें

विलम्बो नैव कर्त्तव्य आयुर्याति दिने-दिने।
न करोति यमः क्षान्ति धर्मस्य त्वरिता गतिः।।144।।

दोहा– प्रतिदिन बीते उम्र यम, क्षमा करें ना जान।
शीघ्र सुगति हो धर्म की, देर करे ना मान।।144।।

अर्थ– आयु प्रतिदिन बीत रही है। यम, क्षमा नहीं करता है। अतः विलम्ब नहीं करना चाहिए। धर्म की गति शीघ्र होती है अर्थात् उसे अविलम्ब धारण करना चाहिए।

सुपुत्र कुल दीपक ?

शर्वरी दीपकश्चन्द्रः प्रभाते दीपको रविः।
त्रैलोक्ये दीपके धर्मः, सुपुत्रः कुलदीपकः।।145।।

दोहा– रात का दीपक चन्द्रमा, दिन का सूर्य प्रभूत।
धर्म दीप त्रय लोक का, कुल का दीप सपूत।।145।।

अर्थ– रात्रि का दीपक चन्द्रमा है। प्रभात का दीपक सूर्य है तीनों लोकों का दीपक धर्म है तथा कुल का दीपक सुपुत्र है।

एकं एव वरं पुत्रो यः सन्मार्गपरायणः।
विचारचतुरो धीमान्-पितृ-मातृ-सुख-प्रदः।।146।।

दोहा– मात-पिता को सौख्य कर, चतुर होय धीमान।
राही हो सन्मार्ग का, एक पुत्र शुभ जान।।146।।

अर्थ– जो सन्मार्ग में चलने वाला है। विचार करने में चतुर है, बुद्धिमान है और माता-पिता को सुख देने वाला है, ऐसा एक ही पुत्र अच्छा है।

Created by Universal Document Converter

न मित्रादपरः कश्चित्प्रतिकारस्त्रिविष्टपे ।
हच्छल्योद्‌धृतये पुंसां विद्यते केतवोज्झितः ।।147 ।।

दोहा– तीन लोक में पुरुष की, करें शल्य जो दूर।
कपट रहित हो मित्र जो, करें नाश भरपूर ।।147 ।।

अर्थ– तीन लोकों में पुरुषों के हृदय की शल्य निकालने के लिए कपट रहित मित्र के सिवाय दूसरा प्रतिकार नहीं है।

धर्म ही सच्चा मित्र

विद्यामित्रं प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु च ।
व्याधितस्यौषधं पथ्यं, धर्मो मित्रं मृतस्य च ।।148 ।।

दोहा– विद्या मित्र प्रवास में, घर में स्त्री मित्र।
मित्रौषधि है रोग में, मृत को धर्म सुमित्र ।।148 ।।

अर्थ– प्रवास में विद्या मित्र है, घरों में स्त्री मित्र है, बीमार के लिए हितकारी औषधि मित्र है और मृत मनुष्य के लिए धर्म मित्र है।

हमारी आकांक्षा

सत्येषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
मध्यस्थभावं विपरीत-वृतौ सदा ममात्मा विदधातु देव ।।149 ।।

दोहा– मैत्री प्राणी मात्र से, गुणवानों से प्रेम।
करुणा हो संक्लिष्ट में, विनय हीन से क्षेम ।।149 ।।

अर्थ– हे देव ! मेरी आत्मा प्राणी मात्र में मैत्री, गुणी जनों में प्रमोद, दुःखी जीवों पर करुणा और विपरीत बुद्धि वालों पर माध्यस्थभाव को धारण करे।

सम्यक्त्व का सच्चा रूप

नास्ति चार्हत्परो देवो धर्मो नास्ति दया परः।
तपो नास्ति च नैर्ग्रन्थ्यादेतत्सम्यक्त्वलक्षणम् ।।150 ।।

Created by Universal Document Converter

दोहा– देव नहीं अरहंत सम, धर्म ना दया समान।
सुतप नहीं निर्ग्रन्थ सम, यह सम्यक्त्व महान।।150।।

अर्थ– अरहंत देव से बढ़कर देव नहीं है। दया से बढ़कर धर्म नहीं है। निर्ग्रन्थता से बढ़कर तप नहीं है। ऐसा श्रद्धान् ही सम्यक्त्व का लक्षण है।

वीतराग सम्यक्त्व

सरागं शमसंवेगानुकम्पास्तिक्य - लक्षितम्।
आत्मशुद्धिकरं ज्ञेयं वीतरागं तु दर्शनम्।।151।।

दोहा– संवेगानुकम्पा आस्तिक्यता, प्रशम सराग सम्यक्त्व।
आत्म शुद्धि के हेतु ये, वीतराग मय सत्व।।151।।

अर्थ– प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य गुणों से अभिव्यक्त सम्यग्दर्शन सरागसम्यक्त्व है और आत्म-शुद्धि को करने वाला दर्शन वीतराग सम्यक्त्व है।

सम्यक्त्वं दुर्लभं लोके, सम्यक्त्वं मोक्ष-साधनम्।
ज्ञानचारित्रयोर्बीजं मूलं धर्मतरोरिव।।152।।

दोहा– दुर्लभ है सम्यक्त्व जग, मुक्ती का सोपान।
ज्ञान चारित्र का बीज है, मूलधर्म का मान।।152।।

अर्थ– जगत् में सम्यग्दर्शन दुर्लभ है, सम्यग्दर्शन मोक्ष का कारण है, सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र का बीज है यह धर्मरूपी वृक्ष की जड़ के समान है।

आचारः कुलमाख्याति, व पुराख्याति भोजनम्।
संभ्रमः स्नेहमाख्याति, देशमाख्याति भाषणम्।।153।।

दोहा– सदाचार से वंश का, भोजन पाय शरीर।
संभ्रम से सम्मान हो, प्रवचन से शिवशार।।153।।

अर्थ– आचरण से कुल वंश, परिवार, कुटुम्ब प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। शरीर भोजन से प्रसिद्धि पाता है। सम्मान आदर प्रतिष्ठा से स्नेह ज्ञात होता है। स्नेह प्रेम भाव प्रकट होता है। व्याख्यान, भाषण और प्रवचन में देश, राष्ट्र और वहाँ की जनता की प्रशंसा, प्रतिष्ठा एवं आदरभाव विश्व में होता है।

Created by Universal Document Converter

''प्रश्नोत्तर रत्नमालिका''

मंगलाचरण

प्रणिपत्य वर्द्धमानं, प्रश्नोत्तर-रत्नमालिकां वक्ष्ये।
नाग-नरामरवन्द्यं, देव देवाधिपं वीरम् ।।1।।

(ज्ञानोदय छंद)

सुर नर नागेन्द्रों से वन्दित, देव श्री देवाधिदेव।
वर्धमान श्री वीर के पद में, वन्दन करते जीव सदैव।।
ग्रन्थ रहा पावन रत्नाकर, प्रश्नमालिका प्रश्नोंवान।
राजर्षि अमोघवर्ष के द्वारा, किया विशद जिसका व्याख्यान।।1।।

अर्थ– नागेन्द्र, मनुष्य और देवों से वंदनीय स्वयं देवस्वरूप, देवों के अधिपति श्री वीर वर्द्धमान भगवान को नमस्कार करके प्रश्नोत्तर रत्नमालिका को कहूँगा।

कः खलु नालंक्रियते, दृष्टादृष्टार्थ - साधनपटीयान्।
कण्ठस्थितया विमल, प्रश्नोत्तररत्नमालिक-य।।2।।

कण्ठ में स्थित प्रश्नोत्तर की, विमल रत्न माला शुभकार।
दृष्ट और अदृष्ट अर्थ का, साधक अनुपम मंगलकार।।
कौन रहा जगती पर इससे?, नहीं विभूषित होवें आप।
होंगे सभी विभूषित जिनसे, कट जाते हैं सारे पाप।।2।।

अर्थ– कण्ठ में स्थित अच्छे प्रश्न–उत्तर की रत्नमाला से दृष्ट और अदृष्ट अर्थ को साधने में प्रवीण कौन व्यक्ति विभूषित नहीं होगा ? अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति होगा।

भगवन् कि मुपादेयं, गुरुवचनं हेयमपि च किमकार्यम्।
को गुरुरधिगततत्त्वः, सत्त्वहिताभ्युद्यतः सततम्।।3।।

हे भगवन् ! क्या उपादेय है, उपादेय हैं गुरु वचन।
और हेय भी क्या है भगवन् !, हेय अकार्य कहे गुरुजन।।
गुरू कौन? जिनसे तत्त्वों को, समझ लिया जाए भगवन् !।
एवं सतत् सभी जीवों के, हितकर होते जो पावन।।3।।

Created by Universal Document Converter

अर्थ– हे भगवन् ! क्या उपादेय है, गुरु वचन उपादेय हैं? और हेय भी क्या है? नहीं करने योग्य कार्य है। गुरु कौन है ? जिसनें तत्त्वों को समझ लिया है, वह तथा जो निरन्तर सभी प्राणियों के हित में लगा रहता है।

त्वरितं किं कर्त्तव्यं, विदुषा संसार-सन्ततिच्छेदः।
किं मोक्षतरोर्बीजं, सम्यग्ज्ञानं क्रियासहितम्।।4।।

बुद्धिमान व्यक्ति के द्वारा, शीघ्र कार्य करना क्या? युक्त।
भव सन्तति का छेद हो जिनसे, कार्य वही करना उपयुक्त।।
बीज मोक्ष तरु का क्या? होता, वह है सम्यक्ज्ञान महान।
विशद क्रिया से सहित होय जो, ऐसा कहते हैं भगवान।।4।।

अर्थ– बुद्धिमान व्यक्ति के द्वारा शीघ्र क्या करना चाहिए? संसार सन्तति का छेद करना चाहिए। मोक्षरूपी वृक्ष का बीज क्या है ? वह सम्यग्ज्ञान जो क्रिया से सहित है।

किं पथ्यदानं धर्मः कः, शुचिरिह यस्य मानसं शुद्धम्।
कः पण्डितो विवेकी, किं विषमवधीरिता गुरवः।।5।।

भोज्य मार्ग में क्या है भाई?, वह है पावन धर्म विशेष।
कौन पवित्र लोक में गाया?, मानस शुद्धवान अवशेष।।
पंडित कौन कहा है? जग में, परम विवेकी जीव महान।
विष क्या? जीवन का घाती है, गुरु तिरस्कार कहाए प्रधान।।5।।

अर्थ– मार्ग में भोजन क्या है? धर्म है। इहलोक में पवित्र कौन है? जिसका मानस शुद्ध है। पण्डित कौन है, विवेकी जीव। जहर क्या है ? गुरुओं का तिरस्कार।

किं संसारे सारं बहुशोऽपि विचिन्त्यमानमिदमेव।
मनुजेषु दृष्टतत्त्वं स्वपरहितायोद्यतं जन्म।।6।।

इस संसार में सार कहा क्या ?, बहुत बार भी चिन्तनकार।
यह है कि मानव जीवन पा, तत्त्व दर्शि होना यह सार।।

Created by Universal Document Converter

स्व पर के हित हेतु कहा जो, उसमें उद्यत रहे विशेष।
मन-वच-तन से उसके हेतू, कार्य करे अपना अवशेष।।6।।

अर्थ- संसार में सार क्या है ? बहुत बार भी चिन्तन करते हुए यह ही है कि मनुष्य जन्म पाकर तत्त्वदर्शी होते हुए स्व-पर हित के लिए उद्यत रहना।

मदिरेव मोहजनकः, कः स्नेहः के च दस्यवो विषया।
का भववल्ली तृष्णा, को वैरी नन्वनुद्योगः।।7।।

मोहोत्पादक मदिरा सम क्या ?, हैं स्नेह कहे भगवान।
और लुटेरा कौन? जगत में, इन्द्रिय विषय लुटेरे मान।।
इस संसार भ्रमण की वेली, क्या है ? वह है तृष्णा जान।
वैरी कौन? रहा निश्चय से, वह पुरुषार्थ हीन है मान।।7।।

अर्थ- मदिरा के समान मोह उत्पन्न करने वाला कौन है ? स्नेह है। और लुटेरे कौन हैं ? विषय हैं। संसार की लता क्या है ? तृष्णा है। कौन वैरी है ? वास्तव में पुरुषार्थ नहीं करना ही अपना दुश्मन है।

कस्माद्भयमिह मरणाऽदन्धादपि को विशिष्यते रागी।
कः शूरो यो ललना-लोचनबाणैर्न च व्यथितः।।8।।

किससे है भय सर्वलोक में?, मृत्यु से भय रहा विशेष।
कौन रहा अंधे से बढ़कर?, वे हैं रागी जीव अशेष।।
शूर कौन? है सर्व जहाँ में, जो स्त्री नेत्रों के वाण।
व्यथित ना हो उनसे वह ज्ञानी, करें शीघ्र ही निज कल्याण।।8।।

अर्थ- इस लोक में भय किससे है? मरण से है। अंधे से भी कौन बढ़कर है? रागी जीव। शूर कौन है? जो स्त्री के नेत्ररूपी बाणों से पीड़ित नहीं हुआ।

पातुं कर्णाञ्जलिभिः, किममृतमिव बुध्यते सदुपदेशः।
किं गुरुताया मूलं , यदेतदप्रार्थनं नाम।।9।।

कर्ण रूप अञ्जलि से पीने, हेतू अमृत सम शुभकार।
क्या? जाना जाए तो कहते, सद् उपदेश है मंगलकार।।

Created by Universal Document Converter

क्या है? मूल बड़प्पन का यह, कोई पूछे तुमसे बात।
अयाचीक वृत्ती यह जानो, कहना सबसे मेरे भ्रात।।9।।

अर्थ– कर्णरूपी अञ्जलि से पीने के लिए अमृत के समान क्या जाना जाता है, सदुपदेश। बड़प्पन का मूल कारण क्या है ? यह कि अयाचकवृत्ति।

किं गहनं स्त्रीचरितं, कश्चतुरो यो न खण्डितस्तेन।
किं दारिद्र्यमसंतोष, एवं किं लाघवं याञ्चा।।10।।

क्या है जटिल जानने हेतू?, स्त्री का चारित्र विशेष।
कौन चतुर स्त्री चरित्र से, खण्डित ना हो सके सुधेश।।
है दरिद्रता क्या? इस जग में, असन्तोष कहते जिन संत।
लघुता क्या है? उसका उत्तर, कहे याचना जिन भगवंत।।10।।

अर्थ– जानने में जटिल क्या है ? स्त्री का चरित्र। कौन चतुर है? जो उस स्त्री के चरित्र से टूटा नहीं। दरिद्रता क्या है ? असंतोष है। इसी प्रकार लघुता क्या है? याचना।

किं जीवितमनवद्यं, किं जाड्यं पाटवेऽप्यनभ्यासः।
को जागर्ति विवेकी, का निद्रा मूढ़ता जन्तोः।।11।।

जीवन क्या है ? दोष रहित शुभ, जड़ता क्या? पूछे कोई खास।
चतुराई होने पर भी कोई, करे नहीं उसका अभ्यास।।
जाग्रत कौन? रहा दुनियाँ में, रहे विवेकी जो भी जीव।
प्राणी की निद्रा क्या? भाई, रही मूढ़ता विशद अतीव।।11।।

अर्थ– जीवन क्या है? दूषण रहित होना। जड़ता क्या है? चतुर होने पर भी अभ्यास नहीं करना। कौन जाग्रत है? विवेकी जीव। निद्रा क्या है? प्राणी की मूढ़ता।

नलिनीदलगतजललवतरलं किं यौवनं धनमथायुः।
के शशधरकरनिकराऽनुकारिणः सज्जना एव।।12।।

Created by Universal Document Converter

कमल पत्र पर लघू बूंद सम, क्षण भंगुर क्या? रहा विशेष।
यौवन धन आयू ये तीनों, क्षण भंगुर जानो अवशेष।।
शशि की किरणों के समूह का, अनुकरणीय रहे को? भ्रात।
सज्जन पुरुष रहे इस जग में, मंगलकारी जग विख्यात।।21।।

अर्थ– कमल के पत्ते पर छोटी बूँदों के समान क्षणभंगुर क्या है? यौवन धन और आयु है। चन्द्रमा की किरणों के समूहों का अनुकरण करने वाले कौन हैं? सज्जन पुरुष ही हैं।

को नरकः परवशता, किं सौख्यं सर्वसंगविरतिर्या।
किं सत्यं भूतहितं, किं प्रेयः प्राणिनामसवः।।13।।

क्या है? नरक लोक में भाई, पराधीनता सुख क्या खास?।
परिग्रह विरहित है सुख अनुपम, आगम में ऐसा विख्यात।।
क्या है? सत्य लोक में अतिशय, जीवों का हित रहा महान।
प्रिय वस्तू जो रही लोक में, सभी प्राणियों को निज प्राण।।13।।

अर्थ– नरक क्या है ? पराधीन होना। सुख क्या है? जो समस्त परिग्रह से विरति है, वह सुख है। सत्य क्या है? प्राणियों का हित करना। प्रिय वस्तु क्या है? प्राणियों को अपने प्राण।

किं दानमनाकाङ्क्षं, किं मित्रं यन्निवर्तयति पापात्।
कोऽलंकारः शीलं, किं वाचां मण्डनं सत्यम्।।14।।

क्या है? दान लोक में अनुपम, आकांक्षा विरहित हो दान।
मित्र कौन है? इस जगती पर, पाप से रोके जो विद्वान।।
आभूषण क्या? रहा जीव का, परम शील पालन शुभकार।
वचनों का आभूषण क्या है?, सत्य वचन जानो मनहार।।14।।

अर्थ– दान क्या है? आकांक्षा से रहित होकर देना ही दान है। मित्र कौन है? जो पाप से रोकता है। आभूषण क्या है? शील है। वचनों का आभूषण क्या है? सत्य है।

Created by Universal Document Converter

किमनर्थफलं, मानसमसंगतं का सुखावहा मैत्री।
सर्वव्यसनविनाशे, को दक्षः सर्वथा त्यागः ।।15 ।।

क्या अनर्थ का फल है? जग में, मन को व्यथित कहे तीर्थेश।
सुख देने वाली वस्तु क्या ?, जानो मैत्री भाव विशेष।।
को समर्थ है सर्व दुखों के, नाश हेतु जग में शुभकार।
इसका उत्तर देते जिनवर, त्याग भाव है भली प्रकार।।15।।

अर्थ– अनर्थ का फल क्या है? मन का व्यथित होना। सुख देने वाली चीज क्या है? मैत्री भावना। समस्त दुखों के नाश में कौन समर्थ है? सर्व प्रकार से त्याग करना।

कोऽन्धो योऽकार्यरतः, को बधिरो यः शृणोति न हितानि।
को मूको यः काले, प्रियाणि वक्तुं न जानाति ।।16 ।।

अन्धा कौन रहा जगती पर, निन्द्य कार्य जो करे विशेष।
बधिर कौन है? पूछे कोई, सुने ना हित की बात अशेष।।
गूँगा कौन है? इस पृथ्वी पर, रहा लोक में क्या विख्यात?।
यथा समय जो प्रिय वचन की, कहता नहीं है अपनी बात।।16।।

अर्थ– अन्धा कौन है? जो अयोग्य/निंद्य कार्य में लगा है। बहरा कौन है? जो हित को नहीं सुनता है। गूंगा कौन है? जो समय पर प्रिय बोलना नहीं जानता है।

किं मरणं मूर्खत्वं, किं चानर्घ्यं यदवसरे दत्तम्।
आमणात्किं शल्यं, प्रच्छन्नं यत्कृतमकार्यम् ।।17 ।।

क्या है? मरण लोक में भाई, मूर्खपना कहते विद्वान।
है बहुमूल्य लोक में क्या?, शुभ अवसर पर जो देवे दान।।
मृत्युकाल तक शल्य रहे क्या?, इसका उत्तर रहा प्रधान।
जो अकार्य हो गुप्त रीति से, किया गया हो ऐसा मान।।17।।

Created by Universal Document Converter

अर्थ– मरण क्या है? मूर्खपना और बहुमूल्य क्या है? जो अवसर पर दिया जाये। मरण समय तक शल्य क्या है? जो नहीं करने योग्य कार्य गुप्त रीति से किया गया हो।

कुत्र विधेयो यत्नो, विद्याभ्यासे सदौषधे दाने।
अवधीरणा क्व कार्या, खलपरयोषित्परधनेषु।।18।।

कहा प्रयत्न करना है उत्तम, सदा सर्वदा विद्याभ्यास।
एवं औषधि दान से करना, यही प्रयत्न माना है खास।।
कहाँ? अनादर करना उत्तम, पर धन पर स्त्री में जान।
और दुष्ट स्त्री में भी हो, जो होवे दुर्गुण की खान।।18।।

अर्थ– प्रयत्न कहाँ करना चाहिए? हमेशा विद्या के अभ्यास में, औषध दान में। अनादर कहाँ करना चाहिए? दुष्ट, परस्त्री और पर धन में।

काहर्निशमनुचिन्त्या, संसारासारता न च प्रमदा।
का प्रेयसी विधेया, करुणादाक्षिण्यमपि मैत्री।।19।।

अनुचिंतन क्या? करे रात दिन, सुधी जीव साधू अनगार।
काल अनादि भ्रमण कराए, जानो यह संसार असार।।
स्त्री चिन्तन करे कभी ना, कौन? प्रेयसी बने प्रधान।
करुणा और कुशलता मैत्री, भाव बने अपने यह जान।।19।।

अर्थ– रात-दिन क्या चिन्तन करना चाहिए? संसार की असारता का स्त्री का नहीं। प्रेमिका किसे बनाना चाहिए? करुणा, कुशलता और मैत्री भाव को।

कण्ठगतैरप्यसुभिः, कस्यात्मा नो समर्प्यते जातु।
मूर्खस्य विषादस्य च, गर्वस्य तथा कृतघ्नस्य।।20।।

प्राण कण्ठ गत होने पर भी, नहीं समर्पित करें कभी।
स्वयं आपको मेरे भाई, सज्जन जो हैं जीव सभी।।
खेद खिन्न जो मूर्ख घमण्डी, तथा जीव जो रहे कृतघ्न।
उनके आश्रय से जीवों का, जीवन हो जाएगा भग्न।।20।।

Created by Universal Document Converter

अर्थ– कण्ठगत प्राण होने पर भी अपने को किसे कभी भी समर्पित नहीं करना चाहिए? मूर्ख को खेद–खिन्न पुरुष को घमण्डी को तथा कृतघ्न को।

कः पूज्य सद्वृत्तः, कमधनमाचक्षते चलितवृत्तम्।
केन जितं जगदेतत्, सत्यतितिक्षावता पुंसा।।21।।

पूज्य कौन है? इस जगती पर, जो है सम्यक् चारित वान।
निर्धन कौन किसे कहते हैं?, अस्थिर चारित पाए जान।।
इस संसार को किसने जीता, विजयी कौन? रहा गुणवान।
सत्य और सहनशील पुरुष ने, जीता है यह सर्व जहान।।21।।

अर्थ– पूज्य कौन है? सम्यक्चारित्र वाला। निर्धन किसे कहते हैं? जिसका चरित्र अस्थिर है। यह संसार किसने जीता ? सत्य और सहनशील पुरुष ने।

कस्मै नमः सुरैरपि, सुतरां क्रियते दया प्रधानाय।
कास्यादुद्विजितव्यं, संसाराण्यतः सुधिया।।22।।

देवों द्वारा किसे नमस्कार?, अच्छी तरह किया जाता।
दया प्रधान पुरुष ही जग में, जगत् पूज्यता को पाता।।
बुद्धिमान को किससे भीति?, जग के प्राणी करें प्रधान।
इस संसार रूप जंगल से, रहें सभी भयभीत महान।।22।।

अर्थ– देवों के द्वारा किसके लिए अच्छी तरह नमस्कार किया जाता है? दया प्रधान पुरुष के लिए बुद्धिमान को किससे भीति होना चाहिए? संसाररूपी जंगल से।

कस्य वशे प्राणिगणः, सत्यप्रियभाषिणो विनीतस्य।
क्व स्थातव्यं न्याय्ये, पथि दृष्टादृष्टलाभाय।।23।।

किसके वश में होते प्राणी?, सत्य और प्रिय कहें वचन।
जो विनीत है उनके वश में, रहते हैं जग के सज्जन।।
दृष्टादृष्ट लाभ के हेतू, कहाँ रहे ज्ञानी विद्वान।
न्याय के पथ में चलें हमेशा, कहा मोक्ष का यह सोपान।।23।।

Created by Universal Document Converter

अर्थ– प्राणी किसके वश में होते हैं। सत्य और प्रिय बोलने वाले के तथा विनीत पुरुष के। दृष्ट–अदृष्ट लाभ के लिए कहाँ रहना/चलना चाहिए? न्याय पथ में।

विद्युत्विलसितचपलं, किं दुर्जनं संगतं युवतयश्च।
कुलशैलनिष्प्रकम्पाः, के कलिकालेऽपि सत्पुरुषाः।।24।।

बिजली सम चंल क्या? जग में, दुर्जन से मैत्री पहिचान।
और स्त्रियों की संगति है, ऐसा कहते हैं विद्वान।।
कलीकाल में भी कुल गिरि सम, निश्चल गाये कौन? विशेष।
सज्जन पुरुष लोक में निश्चल, जग के प्राणी रहें अशेष।।24।।

अर्थ– बिजली के समान चंचल क्या है? दुर्जन के साथ मैत्री तथा स्त्रियाँ हैं। कालिकाल में भी कुलाचल पर्वत के समान निश्चल कौन हैं? विशद सज्जन पुरुष हैं।

किं सौच्यं कार्पण्यं, सति विभवे किं प्रशस्यमौदार्यम्।
तनुतरवित्तस्य तथा, प्रभविष्णोर्यत्सहिष्णुत्वम्।।25।।

शोचनीय क्या है? इस जग में, रही कृपणता जग में भ्रात।
वैभव पा भी क्या? प्रशंसनीय, है उदारता जग विख्यात।।
निर्धन को भी क्या प्रशंसनीय, वही उदारता रही महान।
क्या प्रशंसनीय है समर्थ को?, सहनशीलता अनुपम मान।।25।।

अर्थ– शोचनीय क्या है? कृपणता, वैभव होने पर भी क्या प्रशंसनीय है? वही उदारता, समर्थ पुरुष को क्या प्रशंसनीय है? जो सहनशीलता है।

चिन्तामणिरिव दुर्लभ-मिह ननुकथयामि चतुर्भद्रम्।
किं तद्वदन्ति भूयो, विधूत तमसो विशेषेण।।26।।
दानं प्रियवाक्यसहितं, ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौर्यम्।
त्यागसहितं च वित्तं, दुर्लभमेकतच्चतुर्भद्रम्।।27।।

Created by Universal Document Converter

चिंतामणि सम दुर्लभ है क्या?, चार भद्र निश्चय से जान।
जो अज्ञान तिमिर विरहित जन, करें कथन जिसका विद्वान।।
क्षमा युक्त हो शौर्य त्याग युत्, विमल गर्व विरहित हो ज्ञान।
दान हो या प्रिय वचनों पूर्वक, चार भद्र दुर्लभ हैं मान।।26-27।।

अर्थ- चिन्तामणि रत्न के समान दुर्लभ इस संसार में क्या है? निश्चय से चार भद्र हैं। अज्ञान अंधकार से रहित जन विशेष रूप से उसी का कथन खूब करते हैं उसी को मैं कहता हूँ। प्रिय वचनों के साथ दान, गर्व रहित ज्ञान, क्षमा सहित शौर्य और त्याग के साथ धन यह चार कल्याणप्रद दुर्लभ हैं।

इति कण्ठगता विमला, प्रश्नोत्तर रत्नमालिका येषाम्।
ते मुक्ताभरणा अपि, विभान्ति विद्वत्समाजेषु।।28।।
विवेकात् त्यक्तराज्येन, राज्ञेयं रत्नमालिका।
रचिताऽमोघवर्षेण, सुधियां सदलंकृतिः।।29।।

होय कण्ठगत जिनको निर्मल, प्रश्नोत्तर रत्नमाला जान।
रहित आभरण विद्वानों की, सभा में शोभित होवे मान।।
छोड़ा राज्य विवेक से राजा, अमोघवर्ष ने 'विशद' प्रधान।
विद्वानों को उत्तम भूषण, रूप कृती यह रची महान।।28-29।।

अर्थ- इस प्रकार जिन व्यक्ति को यह निर्मल प्रश्नोत्तर रत्नमाला कण्ठगत हो जाती है वे लोग आभरण से रहित होते हुए भी विद्वानों की सभा में सुशोभित होते हैं। विवेक से जिन्होंने राज्य छोड़ दिया है। उस राजा अमोघवर्ष के द्वारा बुद्धिमानों के लिए उत्तम आभूषण रूप यह विशद कृति रची है।

दोहा- प्रश्नोत्तर रत्नमालिका, है जो प्रश्नोवान।
उत्तर देकर के विशद, किए श्रेष्ठ समाधान।।
वीर निर्वाण पच्चीस सौ सेंतालिस सुदि ज्येष्ठ।
पद्यानुवाद संयुत पढ़ें, भाव से सभी यथेष्ठ।।

Created by Universal Document Converter

रत्नाकर पञ्चविंशतिका

रचयिता-रत्नाकर सूरिकृत

पद्यानुवाद-पू. आचार्य श्री 108 विशदसागरजी महाराज

श्रेयः श्रियां मंगल-केलि-सद्म, नरेन्द्र-देवेन्द्र-नताङ्घ्रि-पद्म !।
सर्वज्ञ ! सर्वातिशय ! प्रधान !, चिरञ्जय-ज्ञान-कला-निधान ।।1 ।।

(ज्ञानोदय छंद)

शुभ कल्याणकारी लक्ष्मी के, हे पावन क्रीड़ा स्थान।
इन्द्र नरेन्द्रों द्वारा नम्री, भूत चरण वाले भगवान ।।
हे सम्पूर्ण अतिशयों वाले, ज्ञान कला के श्रेष्ठ निधान।
आप रहो जयवन्त चिरन्तन, करते यहाँ विशद गुणगान ।।1 ।।

अर्थ– कल्याणकारी लक्ष्मी के शुभ क्रीड़ा के स्थान हे चक्रवर्ती ! देवेन्द्र के द्वारा नम्रीभूत चरण, हे सर्वज्ञ ! हे सम्पूर्ण अतिशय वाले ! हे प्रदान/मुख्य/स्वामी ! हे ज्ञान कला की खान स्वरूप ! आप चिरकाल तक जयवन्त रहें।

प्रतिज्ञा वचन

जगत्त्रयाधार ! कृपावतार !, दुवार - संसार - विकार-वैद्यः।
श्री वीतराग ! त्वयि मुग्धभावाद्, विज्ञ ! प्रभो ! विज्ञापयामि किञ्चित् ।।2 ।।

दया अहिंसा के अवतारी, हे तीनों जग के आधार।
हे संसार विकार विनाशी, परम वैद्यवर मंगलकार ।।
वीतराग हे विज्ञ प्रभो !, तव सम्मुख सरल भाव के साथ।
किन्चित् करूँ निवेदन मैं प्रभु, चरण झुकाकर अपना माथ ।।2 ।।

अर्थ– हे तीनों जगत् के आधार ! हे दया, अहिंसा के अवतार, हे बड़ी कठिनता से दूर किए जाने वाले संसार के विकारों के दूर करने वाले वैद्य !, हे अंतरंग व बहिरंग लक्ष्मी सहित श्री वीतराग ! हे ज्ञाता ! हे स्वामिन् ! आपके विषय में/आपके सम्मुख सरल भाव से कुछ निवेदन कर रहा हूँ।

Created by Universal Document Converter

आलोचना

किं बाललीलाकलितो न बालः, पित्रोः पुरो जल्पति निर्विकल्पः।
तथा यथार्थं कथयामि नाथ ! निजाशयं मानुशयस्तवाग्रे।।3।।

बाल क्रीड़ा से सहित बाल ज्यों, मात-पिता के जाके अग्र।
निर्विकल्प हो क्या ना कहता, कहता अपनी बात समग्र।।
मैं यथार्थ अभिप्राय को अपने, पश्चात्ताप से हो संयुक्त।
आपके आगे कहता हूँ प्रभु, करो आप जो है उपयुक्त।।3।।

अर्थ- हे स्वामिन् ! जैसे बाल क्रीड़ा से सहित बालक माता-पिता के आगे निर्विकल्प होकर क्या नहीं कहता है ? पश्चात्ताप युक्त मैं यथार्थ अपने अभिप्राय को आपके आगे कहता हूँ।

जिनवाणी महिमा

दत्तं न दानं परिशीलितं च, न शालिशीलं, न तपोऽभितप्तम्।
शुभो न भावोऽप्यभवद् भवेऽस्मिन्, विभो ! मया भ्रान्तमहो मुधैव।।4।।

हे स्वामी ! मेरे द्वारा ना, दान दिया ना ही स्वाध्याय।
साधर्मी से मेल किया ना, शील का पालन किया ना जाय।।
तप को तपा ना इस भव में शुभ, भाव हुए न मेरे देव !।
है आश्चर्य कि व्यर्थ भ्रमण मैं, जग में करता रहा सदैव।।4।।

अर्थ- हे स्वामिन् ! मेरे द्वारा न दान दिया गया, न स्वाध्याय, साधर्मियों से मेल-मिलाप किया, न शील का पालन किया, न तप को तपा और न इस भव में शुभ भाव भी हुआ। आश्चर्य है कि में व्यर्थ ही परिभ्रमण करता हूँ।

कैसे भजूँ

दग्धोऽग्निना क्रोधमयेन दष्टो, दुष्टेन लोभाख्य-महोरगेण।
ग्रस्तो मदाग्राहग्रहेण माया, जालेन बद्धोऽस्मि कथं भजे त्वाम्।।5।।

Created by Universal Document Converter

क्रोध रूप अग्नी के द्वारा, दग्ध हुआ हूँ हे भगवान !।
दुष्ट लोभ नामक फणधर से, डसा गया हूँ हो अज्ञान।।
अहंकार रूप मच्छों से, प्रभु मैं खाया गया हूँ साथ।
माया पास से बँधा हुआ हूँ, कैसे आपको ध्यायूँ नाथ? ।।5 ।।

अर्थ– हे भगवन् ! मैं क्रोधरूपी अग्नि के द्वारा जलाया गया हूँ, दुष्ट लोभ नामक विशाल सर्प के द्वारा डसा गया हूँ। अहंकार रूपी मगरमच्छ की पकड़ से पीड़ित/निगला गया/खाया गया हूँ तथा मायारूप पास/बंधन से बँधा हुआ हूँ। आपको कैसे भजूँ।

आत्मकल्याण प्रेरणा

कृतं मयामुत्र हितं न चेह, लोकेऽपि लोकेश ! सुखं न मेऽभूत।
अस्मादृशां केवलमेव जन्म, जिनेश ! जज्ञे भवपूरणाय।।6।।

इह पर लोक में मेरे द्वारा, हित ना किया गया लोकेश !।
अतः लोक में भी सुख मुझको, प्राप्त हुआ ना कभी जिनेश !।।
हम जैसे लोगों का जीवन, मात्र भवों की पूर्तीवान।
हेतु हुआ है इस जगती पर, व्यर्थ जाय जो हे भगवान !।।6 ।।

अर्थ– हे जगत् के स्वामिन् ! मेरे द्वारा परलोक और इस लोक में हित नहीं किया गया इसलिए इस लोक में भी मुझे सुख नहीं हुआ, अतः हे जिनेन्द्र ! हम जैसे लोगों का जन्म/उत्पत्ति मात्र भवों की पूर्ति के लिए ही हुआ।

जिनवाणी रसपान

मन्ये मनो यन्न मनोज्ञवृत्तं, त्वदास्य-पीयूष-मयूख-लाभात्।
द्रुतं महानन्दरसं कठोरं, अस्मादृशां देव ! तदश्मनोऽपि।।7।।

पत्थर से भी है कठोर मन, हम जैसों का हे भगवान !।
यही मानते हैं हे स्वामी !, कैसे हो मेरा कल्याण।।
नाथ ! आपके मुख रूपी शुभ, चाँद लाभ से शीघ्र महान।
आनन्दामृत सच्चरित्र को, प्राप्त ना होता हे भगवान !।।7 ।।

Created by Universal Document Converter

अर्थ– हे देव ! मैं मानता हूँ कि जो हम जैसों का पत्थर से भी कठोर मन वह आपके मुखरूपी चन्द्रमा के लाभ से शीघ्र महान् आनन्दरसरूप सम्यक्चारित्र को नहीं प्राप्त होता ?

आत्मशत्रु प्रमाद और निद्रा

त्वत्तः सुदुष्प्राप्यमिदं मयाप्तं, रत्नत्रयं भूरिभवभ्रमेण।
प्रमाद-निद्रा वशतो गतं तत्, कस्याग्रतो नायक ! पूत्करोमि ।।8 ।।

हे स्वामी ! मेरे द्वारा जो, बड़ी कठिनता से सम्प्राप्त।
होने वाला यह रत्नत्रय, आपसे हमको हुआ है प्राप्त।।
वह भूरी संसार भ्रमण से, निद्रा के वश और प्रमाद।
से वह नष्ट हुआ हे स्वामी !, अतः आपको करता याद ।।8 ।।

अर्थ– हे स्वामिन् ! मेरे द्वारा बड़ी कठिनाई से प्राप्त होने वाला यह रत्नत्रय आपसे प्राप्त किया गया वह बहुत संसार में भटकने से तथा प्रमाद और निद्रा के वश से नष्ट हो गया अब मैं आपको छोड़कर किसके आगे पुकार करूँ ?

हास्यास्पद क्रियाएँ

वैराग्यरङ्गः परवञ्चनाय, धर्मोपदेशो जनरञ्जनाय।
वादाय विद्याध्ययनं च मेऽभूत कियद् ब्रुवे हास्यकरं स्वमीश ! ।।9 ।।

हे स्वामिन् ! वैराग्य का अभिनय, औरों को ठगने का जान।
धर्मोपदेश मनोरंजन के हेतु, किया यहाँ हमने यह मान।।
वाद-विवाद को विद्या अध्ययन, करने हेतु किया विशेष।
हास्य कराने वाले चारित, को मैं कितना कहूँ जिनेश ।।9 ।।

अर्थ– मेरा हे स्वामिन् ! वैराग्य का अभिनय दूसरों को ठगने के लिए धर्म का उपदेश, लोगों को मनोरंजन के लिए और विद्या का अध्ययन, वाद-विवाद के लिए हुआ। अब हँसी कराने वाले अपने चरित्र को मैं कितना कहूँ ?

Created by Universal Document Converter

आनन, नयन और मन के दूषण

परापवादेन मुखं सदोषं, नेत्रं परस्त्रीजन - वीक्षणेन।
चेतः परापाय-विचिन्तनेन, कृतं भविष्यामि कथं विभोऽहम्।।10।।

मैंने पर निन्दा से मुख को, दूषित किया है हे जिननाथ !।
परस्त्री के राग सहित हो, नेत्र भी दूषित किए हैं साथ।।
एवं पर को दुख पहुँचाने, के विचार से चित्त मलीन।
किया है कैसे दोष रहित हो, पाऊँगा मैं ज्ञान प्रवीण !।।10।।

अर्थ– हे प्रभु ! मैंने दूसरों की निन्दा से अपने मुख को दोष सहित किया दूसरों की नारियों को रागसहित देखने से आँखों को दोष सहित किया गया तथा दूसरों को दुखी करने के विचार करने से मन/चित्त को दोष सहित किया मैं कैसे दोष रहित होऊँगा?

सर्वज्ञ के ज्ञान में झलकते मेरे पाप

विडम्बितं यत्स्मरघस्मरार्ति, दशावशात् स्वं विषयान्धलेन।
प्रकाशितं तद् भवतो हियैव, सर्वज्ञ ! सर्व स्वमेव वेत्सि।।11।।

कामरूप राक्षस से पीड़ित, इन्द्रिय विषयों में आशक्त।
इन्द्रियाधीन अंध हो करके, ठगे स्वयं को हो संतप्त।।
तीन लोक के ज्ञाता दृष्टा, हे सर्वज्ञ प्रभो ! जिनराज।
आप स्वयं सबको सब कुछ ही, जानो तारण तरण जहाज।।11।।

अर्थ– जो कामरूपी राक्षस के द्वारा पीड़ित अवस्था की अधीनता द्वारा इन्द्रिय विषयों में अन्धा होने से स्वयं को ठगा/क्लेशित/संतप्त/हताश किया। उसे लज्जा से ही आपसे प्रकट किया। हे सर्व ज्ञाता ! आप स्वयं ही सभी को/सब कुछ जानते हो।

मिथ्यामंत्र, मिथ्याश्रुत, मिथ्यादेव का त्याग

ध्वस्तोन्य-मन्त्रैः परमेष्ठिमन्त्रः, कुशास्त्र-वाक्यैर्निहतागमोक्तिः।
कर्तुं वृथा कर्म कुदेवसङ्गाद्, अवाञ्छि ही नाथ ! मतिभ्रमो मे।।12।।

Created by Universal Document Converter

खोटे मंत्रों से हे स्वामी !, नष्ट किया परमेष्ठी मंत्र।
नष्ट किया आगम वचनों को, पाके शास्त्र के वाक्य स्वतंत्र॥
अन्य कुदेवों की संगति से, कर्मोंदय के घात की चाह।
की है निश्चित मेरी बुद्धी, को भ्रम से पाई जग दाह॥12॥

अर्थ– हे स्वामिन् ! मैंने दूसरे खोटे मन्त्रों से परमेष्ठिमन्त्र नष्ट किया, कुशास्त्रों के वाक्यों से आगम के वचनों को नष्ट किया। कुदेवों की संगति से कर्म के उदय को व्यर्थ/अन्यथा करने के लिए चाहा निश्चित ही मेरी बुद्धि का भ्रम हुआ।

मेरी भूल

विमुच्य दृग-लक्ष्य-गतं भवन्तं, ध्याता मया मूढधिया हृदन्तः।
कटाक्षवक्षोज-गभीरनाभी, कटी-तटीयाः सुदृशां विलासाः॥13॥

आँखों के प्रत्यक्ष आपको, छोड़ के हो जड़ बुद्धीवान।
हृदय में सुन्दर नेत्रों वाली, ललनाओं का किया निदान॥
कटि नितम्ब उन्नत स्तन या, गहन नाभि के अंगोंवान।
स्त्रियोचित निज हाव भाव का, रागी होके कीन्हा ध्यान॥13॥

अर्थ– आँखों के प्रत्यक्ष हुए आपको छोड़कर मुझ मूर्खबुद्धि के द्वारा हृदय के भीतर हृदय में सुन्दर नेत्रों वाली स्त्रियों की तिरछी नजर, स्तन, गहरी नाभि और कूल्हे/नितम्ब और स्त्रियोचित्त हाव-भावों का ध्यान किया।

सन्मार्ग दर्शाओ

लोलेक्षणाः वक्त्र-निरीक्षणेन, यो मानसे राग-लवो विलग्नः।
न शुद्धसिद्धान्त-पयोधिमध्ये, धौतोऽप्यगात् तारक ! कारणं किम्॥14॥

मेरे मन में चंचल नेत्री, ललनाओं का मुख अवलोक।
जो रागांश लगा है उसका, कैसे कर पाएँ हम रोक॥
परम शुद्ध सिद्धान्त सिन्धु के, मध्य में धोया नहीं विशेष।
क्या कारण हम नहीं जानते, हे जग तारण तरण ! जिनेश !॥14॥

Created by Universal Document Converter

अर्थ– हे तरण–तारणहार ! मेरे मन में चंचल नेत्रों वाली स्त्रियों के मुख के देखने से जो रागांश लग गया/चिपक गया है वह शुद्ध सिद्धान्तरूपी समुद्र के मध्य में धोया हुआ भी नहीं गया इसका क्या कारण है?

अज्ञान अहंकार का जनक

अंगं न चंगं न गणो गुणानाम्, न निर्मलः कोऽपि कलाविलासः।
स्फुरत्प्रधानप्रभुता च कापि, तथाप्यहंकार-कदर्थितोऽहम्।।15।।

हे भगवन् ! ना मेरा सुन्दर, यह शरीर ना गुण संचय।
और ना कोई शिल्प फलादिक, का भी है सुन्दर अभिनय।।
और ना कोई स्फुरायमान, नहीं है कोई भी अधिकार।
तो भी अहंकार से पीड़ित, होता रहा मैं बारम्बार।।15।।

अर्थ– हे भगवन् न मेरा सुन्दर शरीर है और न मुझमें गुणों का समुदाय है और न कोई भी प्रयोगात्मक शिल्प कला, संगीत, गीत, नृत्य आदि बहत्तर कलाओं का सुन्दर अभिनय है और न कोई भी स्फुरायमान अधिकार है तो भी मैं अहंकार से पीड़ित हूँ।

मोहबला

आयुर्गलत्याशु न पापबुद्धि, गतं वयो नो विषयाभिलाषः।
यत्नश्च भैषज्यविधौ न धर्मे, स्वामिन् ! महामोहविडम्बना मे।।16।।

आयु शीघ्रतः नशती जाती, पाप बुद्धि ना होवे नाश।
उम्र बीतती जाती लेकिन, विषयाशा ना होवे ह्रास।।
यत्न किया औषधि पाने का, धर्म का कीन्हा नहीं प्रयास।
महामोह की है विडम्बना, हे स्वामी ! हो जिसका नाश।।16।।

अर्थ– शीघ्रता से मेरी आयु नष्ट हो रही है किन्तु पाप में लगने वाली बुद्धि नहीं हो रही है। उम्र बीत रही है किन्तु पञ्चेन्द्रियों के विषयों की आशा नहीं जा रही है और औषधि के अनुष्ठान में प्रयत्न किया किन्तु धर्म के विषय में प्रयत्न नहीं है। हे स्वामिन् ! यह मेरी बड़ी मोह की जालसाजी है।

Created by Universal Document Converter

कर्तव्य ही जीवन है

नात्मा न पुण्यं न भवो न पापं, मया विटानां कटुगीरपीयम्।
अधारिकर्णे त्वयि केवलार्के, पुरःस्फुटे सत्यपि देव ! धिङ्माम्।।17।।

नाथ ! आप में केवल रवि शुभ, प्रस्फुराय हो रहा विशेष।
फिर भी मैंने पुण्य पाप या, इस संसार का भी अवशेष।।
एवं आतम नहीं है कुछ भी, धूर्तों की वाणी का सार।
सुनी है कानों से धारण की, मुझ अज्ञानी को धिक्कार।।7।।

अर्थ– हे नाथ ! आप में केवलज्ञानरूपी सूर्य सामने जगमगाने पर भी मैंने न आत्मा है, न पुण्य है, न संसार है, न पाप है। इस तरह धूर्तों और मूर्खों की खोटी वाणी पी और कानों में धारण की, मुझे धिक्कार है।

दुर्लभ दुष्प्राप्य जैनधर्म

न देव-पूजा न च पात्र-पूजा, न श्राद्धधर्मश्च न साधुधर्मः।
लब्धवापि मानुष्यमिदं समस्तं, कृतं मयाऽरण्यविलापतुल्यम्।।18।।

मैंने जिन पूजा ना की है, और ना पात्रों का सत्कार।
किया ना श्रावक धर्म का पालन, पाला नहीं श्रावकाचार।।
इस मानव पर्याय को पाकर, मैंने कार्य किए जो आन।
किया गया सब मेरे द्वारा, वन अटवीं में रुदन समान।।18।।

अर्थ– मैंने न देवपूजा की और न पात्रों का आदर/सत्कार किया। न श्रावक धर्म का पालन किया और न साधु धर्म का आचरण किया। यह मनुष्य पर्याय पाकर भी मेरे द्वारा सभी कुछ वन में रोने के समान किया गया।

तन, मन, धन का नाश करन

चक्रे मयासत्स्वपि कामधेनु-, कल्पद्रुम-चिन्तामणिषु स्पृहार्तिः।
न जैनधर्मे स्फुटदशर्मदेऽपि, जिनेश ! मे पश्य विमूढभावम्।।19।।

Created by Universal Document Converter

मैंने कामधेनु कल्पद्रुम, एवं चिंतामणि शुभकार।
ना होने पर भी पाने की, इच्छा की है बारम्बार।।
प्रकट रूप से सुखदायक है, फिर भी जैनधर्म में जान।
इच्छा कभी नहीं की हे जिन !, रही मूर्खता विशद महान।।19।।

अर्थ– मैंने कामधेनु, कल्पवृक्ष तथा चिन्तामणि के नहीं होने पर भी पाने की इच्छा की और प्रकट रूप से सुख देने वाले होने पर भी जैनधर्म में इच्छा नहीं की। हे जिनेन्द्र ! मेरे मूर्खता को देखो।

गुरु मुझे कैसे चाहेंगे

सम्भोगलीला न च रोगकीला, धनागमो नो निधनागमश्च।
दारा न कारा नरकस्य चित्ते, व्यचिन्ति नित्यं हि मयाधमेन।।20।।

मुझ नित्कृष्ट मन में हरदम ही, रहा भोग का क्रीड़ावान।
किन्तु रोग की ज्वाला जलती, न विचार यह किया प्रधान।।
किया विचार है धन अर्जन का, नहीं मृत्यु का किया विचार।
किन्तु स्त्रियाँ चाहीं गृह जो, रहीं नरक की अनुपम द्वार।।20।।

अर्थ– मुझ नीच ने सदा ही मन में सम्भोग की क्रीड़ा का विचार किया किन्तु यह रोग की ज्वाला है ऐसा विचार नहीं किया। धन-उपार्जन का तो विचार किन्तु मृत्यु के आने का विचार नहीं किया। स्त्रियाँ चाहीं परन्तु वे नरक की घर हैं, ऐसा विचार नहीं किया।

रत्नत्रय से जन्म सफल

स्थितं न साधोर्हृदि साधुवृत्तात्, परोपकारान्न यशोऽर्जितं च।
कृतं न तीर्थोद्धरणादिकृत्यं, मया मुधा हारितमेव जन्म।।21।।

साधु हृदय में विशद आचरण, का ना पाया है स्थान।
नहीं प्राप्त की परोपकार कर, पुनः प्रतिष्ठा श्रेष्ठ महान।।
तीर्थोद्धार के कार्य किए न, हमने कोई किसी प्रकार।
मैंने व्यर्थ ही जन्म गँवाया, पाकर के यह अपरम्पार।।21।।

Created by Universal Document Converter

अर्थ– साधु के हृदय में उत्तम आचरण से स्थान को प्राप्त नहीं किया और परोपकार से प्रतिष्ठा उपार्जित नहीं की और तीर्थों के उद्धार करने आदि के कार्य को नहीं किया इस प्रकार मैंने व्यर्थ ही जन्म को गँवाया।

भवसागर से कैसे पार

वैराग्यरङ्गो न गुरूदितेषु, न दुर्जनानां वचनेषु शान्तिः।
नाध्यात्मलेशो मम कोऽपि देव, तार्यः कथं कारमयं भवाब्धि ।।22।।

गुरु वचनों में रंगे कभी ना, ना वैराग्य के रंगोंवान।
दुर्जन वचनों में शांती ना, कभी रखी है श्रेष्ठ प्रधान।।
आत्म भावना ज्ञानानुभव का, अंश भी नहीं है मेरे पास।
हे जिनेन्द्र ! यह भव सिन्धू को, कैसे पार करें शिव वास।।22।।

अर्थ– गुरुजनों के वचनों में, मैं वैराग्य के रंग में नहीं रंगा। दुर्जनों के वचनों में मैंने शान्ति नहीं रखी। मेरे कोई भी आत्म सम्बन्धी भावना, ज्ञान, अनुभव का अंश भी नहीं है। हे स्वामिन् ! यह संसार समुद्र किस तरह तरने योग्य होगा?

पुण्यहीन का क्या भविष्य ?

पूर्वो भवेऽकारि मया न पुण्यं, आगामिजन्मन्यपि नो करिष्ये।
यदीदृशाऽहं मम तेन नष्टा, भूतोद्भवद्भावि-भवत्रयीश ।।23।।

पुण्य किया ना पूर्व भवों में, कर पाऊँगा ना मैं अग्र।
इस प्रकार से हूँ तो हे जिन !, मेरे कृत जो रहे समग्र।।
भूत भविष्यत वर्तमान ये, मेरे तीनों भव का नाश।
होता हुआ नजर आता है, कैसे होगा शिवपुर वास।।23।।

अर्थ– मैंने पूर्व भव में पुण्य नहीं किया और आगामी जन्म में भी नहीं कर सकूँगा अगर इस प्रकार मैं हूँ तो हे स्वामिन् ! उस कृत्य/कार्य से मेरे भूत, वर्तमान और भविष्य ये तीनों भव नष्ट हुए।

Created by Universal Document Converter

व्यथा का अंत कथा से

किं वा मुधाऽहं बहुधा सुधाभुक्, पूज्य त्वदग्रे चरित्रं स्वकीयम्।
जल्पामि यस्मात् त्रिजगत्स्वरूप, निरूपकस्त्वं कियदेतदत्र ।।24।।

हे देवों से पूज्य जिनेश्वर, आपके आगे निज आचार।
व्यर्थ कहूँ क्या क्योंकि आपके, आगे है सब कुछ साकार।।
तीनों लोकों के स्वरूप का, निरूपण करने वाले देव !।
कितना कहूँ चारित्र विषय में, होगा अल्प सम्पूर्ण सदैव ।।24।।

अर्थ– हे देवों से पूज्य भगवन् ! आपके आगे मैं अपना आचरण व्यर्थ क्या कहूँ? क्योंकि आप तो तीनों लोकों के स्वरूप का निरूपण करने वाले हैं इस विषय में यह चरित्र कितना कहूँ?

रत्नत्रय दान दो

दीनोद्धार-धुरन्धरस्त्वदपरो नास्ते मदन्यः कृपा-
पात्रं नात्र जने जिनेश्वर ! तथाप्येतां न याचे श्रियम्।
किन्त्वर्हन्निदमेव केवलमहो, सद्बोधिरत्नं शिव-
श्रीरत्नाकर ! मंगलैकनिलयं ! श्रेयस्करं प्रार्थये।।25।।

इस संसार में दीक्षोद्धारक, नहीं आपसा कोई जिनेश।
कृपापात्र ना मुझ सम कोई, तो भी आश्चर्य रहा विशेष।।
मैं धन लक्ष्मी नहीं माँगता, हे अर्हन्त मंगल की खान।
मुक्तिश्री के सिन्धु 'विशद' मुझे, रत्नत्रय निधि करो प्रदान।।25।।

अर्थ– हे जिनेन्द्र ! यहाँ संसार में दरिद्रों का उद्धार करने में अग्रणी आपके सिवाय दूसरा कोई नहीं है तथा मुझसे दूसरा कृपा करने के योग्य नहीं है तो भी आश्चर्य है कि मैं इस सांसारिक धन लक्ष्मी को नहीं माँगता हूँ, परन्तु हे अर्हन्तदेव ! हे मंगल के एकमात्र स्थान ! हे मोक्षरूपी अंतरंग लक्ष्मी के सागर! मैं यह ही एकमात्र कल्याणकारी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय को माँगता हूँ।

Created by Universal Document Converter

सिद्धिप्रिय स्तोत्रम्

(वसन्ततिलका छंद)

सिद्धि-प्रियैः प्रतिदिनं प्रतिभासमानैः,
जन्म-प्रबन्ध-मथनैः प्रतिभाऽसमानैः।
श्रीनाभिराज - तनुभू - पद - वीक्षणेन,
प्रापे जनै-र्वितनु-भू-पदवी क्षणेन ।।1 ।।

(ज्ञानोदय छंद)

नाभिराय सुत आदिनाथ के, चरणों का कर अवलोकन।
मुक्ति प्रिया प्रतिभाषित प्रतिदिन, भव संतति का करें मथन।।
अनुपम बुद्धि के धारी हैं जो, भव्यजनों को क्षण में जान।
सिद्ध मोक्ष पदवी को पाए, करते हम जिनका गुणगान।।1 ।।

अर्थ– श्रीनाभिराजा के पुत्र आदिनाथ भगवान् के चरणों का अवलोकन करने से सिद्धि–मुक्ति ही जिनको प्रिय है, सदैव सम्यग्दर्शनादि गुणों से जो प्रकाशमान हैं, संसार संतति के जो मंथन करने वाले हैं तथा अनुपम बुद्धि के जो धारक हैं, ऐसे भव्यात्माओं ने क्षणमात्र में सिद्ध परमेष्ठी की मोक्ष पदवी प्राप्त की।

येन स्मराऽस्त्र- निकरै - रपराजितेन,
सिद्धिर्वधू ध्रुवमबोधि पराऽजितेन।
संवृद्ध - धर्मसुधिया कविराजमा नः,
क्षिप्रं करोतु यशसा स विराजमानः ।।2 ।।

कामवासना सर समूह से, नहीं पराजित जिन तीर्थेश।
उत्तम मुक्ति वधू निश्चय से, पहिचाने जिनवर अजितेश।।
विशद कीर्ति से अतिशय वृद्धी, धर्म बुद्धि पाए कविराज।
अनन्त चतुष्टय रूप सु लक्ष्मी, हमको भी देवें आज।।2 ।।

Created by Universal Document Converter

अर्थ– कामवासनारूपी बाणों के समूह से नहीं हारने वाले जिन द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ भगवान ने सर्वोत्कृष्ट मुक्तिरूपी कामिनी निश्चय से पहचानी कीर्ति द्वारा सुशोभित वे अजितनाथ भगवान शीघ्र ही अतिशय कर वृद्धिंगत हुई धर्मबुद्धि के साथ कवीश्वरों की शोभा को अथवा कविराज–अर्हन्तदेव उनकी अनंत चतुष्टयादि माँ–लक्ष्मी को हमारे लिए प्रदान करें।

श्रुत्वा वचांसि तव शम्भव ! कोमलानि,
नो तृप्यति प्रवर-शंभव ! कोऽमलानि।
देव-प्रमुक्त-सुमनोऽभवनाऽऽशनानि,
स्वार्थस्य संसृति-मनोभव-नाशनानि ।।3।।

श्रेष्ठ मोक्ष सुख में कारण जो, देव दिव्य वृष्टी के कोष।
हे सम्भव जिनराज ! आपके, अतिशय मधुर और निर्दोष।।
आतम हित के व्यापक एवं, भव भ्रम काम व्यथा नाशक।
वचनों को सुन कौन तृप्त न, होंगे शिव के अनुशासक ।।3।।

अर्थ– हे प्रधान–मोक्ष सुख के उत्पत्ति कारण !, हे देवों द्वारा की गई पुष्पवृष्टि के स्थान ! हे तृतीय तीर्थंकर श्री सम्भवनाथ भगवान् ! आपके अति ही मधुर निर्दोष आत्महित के व्यापक तथा संसार परिभ्रमण व काम व्यथा के नाशक वचनों को श्रवण कर कौन नहीं तृप्त होता ?

यस्मिन् विभाति कलहंस-रवैरशोकः,
छिन्द्यात् स भिन्न-भव-मत्सर-वैर-शोकः।
देवोऽभिनन्दन-जिनो गुरु मेऽघ-जालं,
सम्प्येव पर्वत-तर्टी गुरु-मेघजाऽलं ।।4।।

हंसों के कलरव से जिनके, तरु अशोक शोभित अतएव।
वे भव द्वेष शोक मात्सर्यों, के नाशक अभिनन्दन देव।।
पर्वत की कटनी से प्रगटित, महत मेघ से प्रगटित खास।
पाप समूहों को वे जिनवर, करें पूर्णतः मेरे नाश।।4।।

Created by Universal Document Converter

अर्थ– जिनके समीप समवसरण में जाति विशेष मनोज्ञ हंसों की कलरव से अशोक नामक वृक्ष शोभित होता है, वे संसार, मात्सर्य, द्वेषभाव तथा शोकभाव के नाशक अभिनन्दन नामक चतुर्थ जिनदेव, मेरे महान् पाप समूह को पर्वत की कटनी को महान् मेघ–बादल से उत्पन्न हुई बिजली के समान जड़मूल से नष्ट कर दें।

येन स्तुतोऽसि गत-कुन्तल-ताप-हार !,
चक्राऽपि - जाप - शर-कुन्तलताऽपहार !
भव्य-प्रभो ! सुमतिनाथ ! वरा न तेन,
का माऽऽश्रिता सुमतिनाऽथ वरानतेन ।।5 ।।

केश बंध दुख दाह आभरण, धनुष बाण बरछी तलवार।
चक्रादिक शस्त्रों के त्यागी, भव्यों के स्वामी शुभकार।।
इष्ट प्राप्ति को नमित सुबुद्धि, द्वारा स्तुत सुविधि जिनेश।
उस स्तुति से उन सुबुद्धि ने, पाई ना वर श्री विशेष।।5 ।।

अर्थ– हे केशबन्धन–जटा, दुखदाह तथा आभरण, इन तीनों से रहित ! हे चक्र, तलवार, धनुष–बाण, बरछी आदि सकल शस्त्रों के परित्याग वाले ! हे भव्य जीवों के स्वामी ! हे पंचम तीर्थंकर श्री सुमतिनाथ भगवान् ! इष्ट वस्तु की प्राप्ति के निमित्त नमित होने वाले जिस सुबुद्धि के द्वारा आप स्तुत्य हुए हैं उस स्तुति के प्रभाव से उस सुबुद्धि ने कौन–सी उत्कृष्ट लक्ष्मी नहीं आश्रय की?

मोह - प्रमाद - मद - कोप - रताऽपनाशः,
पञ्चेन्द्रियाऽर्थ - मदकोऽपर - ताप - नाशः।
पद्मप्रभो दिशतु मे कमलां वराणां,
मुक्तात्मनां विगत-शोक-मलाऽम्बराणां ।।6 ।।

क्रोध प्रमाद मोह मद एवं, रतिकारी परिणाम विनाश।
पञ्चेन्द्रिय विषयों की चाहत, ताप किए भव्यों का नाश।।

Created by Universal Document Converter

ऐसे पद्मप्रभ जी मेरे, शोक कर्म वस्त्रादिक सर्व।
रहित आवरण मुक्तात्माओं, की लक्ष्मी को देंय असर्व।।6।।

अर्थ– मोहनीय कर्म, प्रमाद, मद, क्रोध तथा संभोग परिणाम के निर्दयतापूर्वक नाश करने वाले पंच इन्द्रिय विषयों की अनुकूलता उपजाने वाले और भव्य पुरुषों के संताप का नाश करने वाले पद्मप्रभ नामक छठे तीर्थंकर मेरे लिए शोक, कर्ममल व वस्त्रादि आवरण रहित मुक्तात्माओं की श्रेष्ठ लक्ष्मी को प्रदान करें।

ये त्वां नमन्ति विनयेन मही-नभो-गाः,
श्रीमत्सुपार्श्व ! विनयेन महीन-भोगाः।
ते भक्त-भव्य-सुरलोक ! वि-मान-मायाः,
ईशा भवन्ति सुरलोक-विमान-माया।।7।।

पूज्य भक्त देवों के द्वारा, श्री सुपार्श्व पावन तीर्थेश।
जिनपद भू नभगामी सारे, विनय सहित जो पूर्ण अशेष।।
भव्य जीव इन्द्रिय सुख भोक्ता, मद माया विरहित हो सर्व।
सुर लक्ष्मीधारी वैमानिक, पद के स्वामी होंय असर्व।।7।।

अर्थ– हे भव्य देवताओं से भक्ति किए जाने वाले ! हे अन्तरंग और बहिरंग लक्ष्मी के स्वामी सुपार्श्व नामक सप्तम तीर्थंकर ! जो महीगामी मनुष्यादिक व नभोगामी–देव विद्याधरादि प्राणी विनयपूर्वक आप विविध नय के स्वामी को–अनेकान्तनयवादी को नमस्कार करते हैं। वे भव्य प्राणी पूर्ण इन्द्रिय सुख के भोक्ता चक्रवर्ती व मान–माया रहित होते हुए देवलोक के विमान की लक्ष्मी वाले परम वैमानिक देवों की पदवी पाने वाले ईश–स्वामी होते हैं।

आकर्ण्य तावक-वचो वनि-नायकोऽपि,
शान्तिं मनः शम-धियाऽवनि-नायकतोऽप।
चन्द्रप्रभ ! प्रभजति स्म रमाऽविनाशं,
दोर्दुंड-मंडित-रति-स्मर-मा-विनाशं।।8।।

Created by Universal Document Converter

चन्द्रप्रभ की दिव्य ध्वनि सुन, वन नायक भी समतावान।
दुष्ट स्वभाव त्याग देता है, हो जाता है वृषभ समान।।
विषयाशक्त भूप भुज दण्डों, में रति की आशक्ति विनाश।
अनन्त चतुष्टय श्री है शाश्वत, उसमें करते हैं विनिवास।।8।।

अर्थ– हे चन्द्रमा के समान प्रभा वाले अष्टम तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभ भगवान ! आपकी दिव्य वाणी श्रवण कर वन का नायक सिंह भी जो कि हिंसादि खोटे कार्य करते रहने से दुष्ट स्वभाव वाला होता है, उपशम बुद्धि द्वारा मन सम्बन्धी शांति को दुष्ट स्वभाव के प्रभाव को तथा राजा–जो कि विषय भोगों में विशेष आसक्त हुआ करता है। भुजा दंडों में मंडित है रति नामक स्वस्त्री जिसके, ऐसे प्रबल कामदेव की मा–लक्ष्मी–शोभा का विनाश वाले अनंत चतुष्टयादिरूप लक्ष्मी के अविनाश–शाश्वतपने को प्राप्त करता था।

श्री पुष्पदन्त-जिन-जन्मनि का ममाऽऽशा,
यामि प्रिये ! वितनुतां च निकाममाशाः।
इत्थं रतिं निगदताऽतनुना सुराणां,
स्थानं व्यधायि हृदये तनुनाऽसुराणां।।9।।

पुष्पदन्त का जन्म होने पर, मम जीवन की क्या है आश।
अतः प्रिय इस देह से विरहित, और दिशाओं में कर वास।।
इस प्रकार रति नामक स्त्री को, कहकर के काम कुमार।
शीघ्र ही देव और असुरों के मन, वास करे शुभकार।।9।।

अर्थ– हे प्रिये ! नवमें तीर्थंकर श्री पुष्पदन्त जिन का जन्म हो जाने पर मेरे जीवन की आशा ? अतः अत्यन्त शरीर रहितपने का और दिशाओं को प्राप्त होता हूँ। इस प्रकार रति नामा अपनी स्त्री को कहते हुए कामदेव ने शीघ्र ही देवताओं और असुरों के मन में निवास किया।

श्रीशीतलाऽधिप ! तवाऽधि-सभं जनानां,
भव्यात्मना प्रसृति-संसृति भंजनानाम्।

Created by Universal Document Converter

प्रीतिं करोति विवतां सुरसाऽरमुक्तिः,
मुक्तात्मनां जिन ! यथा सुरसार ! मुक्तिः ।।10 ।।

हे देवों के देव कर्मरिपु, के जेता श्री शीतलनाथ।
समवशरण में तव कल्याणी, वाणी सुनें झुकाएँ माथ।।
दीर्घ संसार के नाशक हैं जो, भवि जीवों के प्रति अत्यन्त।
विशद प्रीति पैदा करती हैं, ज्यों सिद्धों में मुक्ति सुकन्त।।10।।

अर्थ– हे देवों के देव ! हे कर्मशत्रुों के विजेता ! हे दशवें तीर्थंकर श्री शीतलनाथ! समवशरण में आपकी कल्याणकारी मधुरवाणी दीर्घ संसार के नाशक भव्य जीवों के प्रति विस्तृत प्रीति को पैदा करती है जैसे कि मुक्तात्माओं के मुक्ति।

पादद्वये मुदित - मानसमानतानां,
श्रेयन् ! मुने ! विगत-मान ! समानतानां।
शोभां करोति तव कां च न भा सुराणां,
देवाऽधिदेव ! मणिकांचन-भासुराणां ।।11 ।।

विगत मान देवाधिदेव हे !, विशद ज्ञानधर श्रेय जिनेश।
तव चरणों में हर्षित होवे, चित्त कमल मेरा सु विशेष।।
नम्रीभूत हुए पूजा को, मणि सुवर्ण से दैदीप्यमान।
देवों द्वारा कीर्ति आपकी, किस शोभा को करे न आन।।11 ।।

अर्थ– हे देवाधिदेव ! हे मानकषाय रहित ! हे प्रत्यक्ष ज्ञान के धारक ! हे ग्यारहवें तीर्थंकर श्री श्रेयांसनाथ भगवान ! आपके चरण युगल में हर्षित चित्त जैसे हो उस प्रकार नम्रीभूत हुए पूजा विस्तार वाले और मणि व सुवर्ण से दैदीप्यमान देवों के आपकी कांति किस शोभा को नहीं करती है ?

घोरांऽधकार - नरक - क्षत - वारणानि,
श्री वासुपूज्य ! जिनदक्ष ! तवाऽरणानि।
मुक्त्यै भवन्ति भव-सागर-तारणानि,
वाक्यानि चित्तभव-सा-गरता-रणानि ।।12 ।।

Created by Universal Document Converter

जिन केवलियों में प्रधान हे, वासुपूज्य तीर्थेश महान !।
घोर तिमिर वाले नरकों की, पीड़ा हारी रहे प्रधान।।
कलह रहित संसार सिन्धु के, कामदेव की लक्ष्मी रूप।
जिसके विषहारी वचनों गत, मुक्ति प्रदायी रहे अनूप।।12।।

अर्थ– हे समान्य केवलियों में मुख्य जिनेन्द्र ! हे बारहवें तीर्थंकर श्री वासुपूज्य भगवान् ! घोर अन्धकार वाले नरक के पीड़ितों की पीड़ा का निवारण करने वाले, कलह–विवाद रहित, संसार सागर के तारक तथा कामदेव की लक्ष्मीरूपी सागर के तारक तथा कामदेव की लक्ष्मीरूपी जहरपने को दूर करने वाले आपके वाक्य मुक्ति प्राप्ति के लिए होते हैं।

भव्य - प्रजा - कुमुदिनी - विधुरंजनानां,
हंता विभासि दलयन् विधुरं जनानां।
इत्थं स्वरूपमखिलं तव ये विदंति,
राज्य भजंति विमलेश्वर ते विदंति।।13।।

भव्य प्रजा रूपी कुमुदों को, विमलनाथ जिन चन्द्र स्वरूप।
कर्म कालिमा के नाशक हैं, आप लोक में ज्योती रूप।।
जन समूह के कष्ट विनाशी, शोभित होते भली प्रकार।
तव स्वरूप को जाने वे भवि, राज्य भोग करते शुभकार।।13।।

अर्थ– हे विमलनाथ भगवान ! भव्ज प्रजारूपी कुमुदिनी के लिए चन्द्र स्वरूप और कर्म कालिमा के नाशक आप जनमसूह की आपत्ति को विनष्ट करते हुए शोभते हो इस प्रकार जो आपके सम्पूर्ण स्वरूप को जानते हैं वे भव्य जीव विशिष्ट हाथियों वाले राज्य को भोगते हैं।

स्वर्गाऽपवर्ग-सुख-पात्र ! जिनाऽतिमात्रं,
यस्त्वां स्मरन् भुवन-मित्र ! जिनाति मात्रं।
श्रीमन्ननंत वर-निवृति-कांत ! कांतां,
भव्यः स याति पदवीं व्रतिकांऽतकांतां।।14।।

Created by Universal Document Converter

स्वर्ग मोक्षकारी हे जिनवर, त्रिभुवन बन्धू हे श्रीमान !।
मुक्ती के भर्त्ता व्रतधारी, अनन्तनाथ मेरे भगवान।।
करे स्मरण भव्य आपको, जीर्ण होय ऐसे भवि जीव।
मृत्यु के मृत्यु कर्त्ता शुभ, पावे मुक्ती सुपद सजीव।।14।।

अर्थ– हे स्वर्ग व मोक्ष सुख के आधारभूत ! हे रागद्वेष के विजेता ! हे त्रिभुवन के बन्धु ! हे उभयलक्ष्मी के स्वामी ! हे श्रेष्ठ मुक्ति के भर्ता ! हे व्रतों के धारक! हे श्रेष्ठ मुक्ति के भर्ता ! हे व्रतों के धारक ! अनंत नामक चौदहवें तीर्थंकर! जो भव्य जीव केवल आपको निरन्तर स्मरण करता हुआ जीर्ण होता है। ऐसा वह भव्य जीव मनोज्ञ व मरण का मरण करने वाली मोक्ष पदवी को पाता है।

जन्माऽभिषेकमकरोत् सुर-राज-नामा-
यस्याऽऽश्रितो गुण - गणैः सु-रराज नाऽमा।
धर्मः करोत्वनलसं प्रतिबोधनानि,
सिद्ध्यै स नः सपदि सम्प्रति वो धनानि।।15।।

धर्मनाथ का इन्द्रराज ने, जन्माभिषेक किया सुविशेष।
जिनके आश्रय से गुणधारी, शोभा पावें धर्म जिनेश।।
शीघ्र हमारे मोक्ष प्राप्ति को, आलस रहित हो भली प्रकार।
प्रति बोधक वाक्यों को तुमरे, विविध विभूती करें अपार।।15।।

अर्थ– जिन धर्मनाथ भगवान का इन्द्र ने जन्माभिषेक किया और जिनके आश्रित हुआ व्यक्ति अनेक गुणों सहित सुशोभित हुआ वे धर्मनाथ तीर्थंकर अति शीघ्र हमारे मोक्ष प्राप्ति के लिए आलस्य रहित जिस प्रकार हों वैसे सदुपदेश सूचक सम्बोधन वाक्यों को तथा तुम्हारे लिए शीघ्र नाना विभूतियों को करें।

Created by Universal Document Converter

नाऽस्तानि यानि महसा विधुनाऽमितानि,
चेतस्तमांसि तपसा विधुनोमि तानि।
इत्याऽऽचरन् वर-तपो गत-कामि-नीति,
शान्तिः पदं दिशतु मेऽगत-कामिनीति ।।16।।

अमित तेज तम को तेजस्वी, रवि से ना कर सके विनाश।
अपने तप बल द्वारा उसको, कर देंगे हम क्षण में नाश।।
विषयी जन की प्रवृत्ति रहित तप, के आचारी शांति जिनेश।
मुझे कामिनी कष्टों की गति, विरहित देवें सुपद विशेष ।।16 ।।

अर्थ– जिन प्रचुर मन सम्बन्धी अन्धकार को तेजस्वी चन्द्रमा द्वारा नहीं नाश कराया जा सका। उनको तपश्चर्या के बल से मैं नष्ट करता हूँ, इस हेतु विषयी पुरुषों की प्रवृत्ति रहित श्रेष्ठ तप को आचरण करने वाले शान्तिनाथ भगवान् मेरे लिए कामिनी व कष्टों की पहुँच रहित पद को प्रदान करें।

कुन्थुः क्षितौ क्षिति-पतिर्गत-मान-सेनः,
पूर्व पुनर्मुनिभूद्धत - मानसेनः।
योऽसौ करोतु मम जंतु-दया-निधीनां,
संवर्द्धनानि विविधर्द्ध्युदयानि धीनां ।।17।।

जो पृथ्वी पर विशद अपरमित, सेना नायक हो चक्रेश।
पुनः काम के नाशी मुनिवर, हुए लोक में कुन्थु जिनेश।।
जीव दया की सुनिधि बुद्धियों, के धारी हो भली प्रकार।
सम्यक् वृद्धीकारी वह निधि, देवें हमको बारम्बार ।।7 ।।

अर्थ– जो पृथ्वी पर पहले तो अपरिमित सेना के धारक चक्रवर्ती पश्चात् कामदेव के नाशक मुनि हुए ऐसे वे कुन्थुनाथ भगवान् मेरे प्राणिमात्र के प्रतिपालना की निधानरूप बुद्धियों के बहुत प्रकार अणिमा, महिमा, गरिमा आदि ऋद्धियों का उदय वाली सम्यक् वृद्धियों को करें।

Created by Universal Document Converter

या ते ऋणोति नितरामुदितानि दानं,
यच्छत्य-भीप्सति न वा मुदिता निदानं।
सा नो करोति जनताऽजन-कोपिताऽपि,
चित्तं जिनाऽर ! गुणभाजन ! कोपि तापि ।।18 ।।

हे गुणभाजन ! अरहनाथ हे !, हर्षित हो जनता अत्यन्त।
श्रवण करें वचनामृत पावन, सारभूत जो रहे अनन्त ।।
रहित निदान दान देती है, दुष्ट जनों को क्रोधाशक्त।
भी वह जनता चित्त को अपने, कोप युक्त न करे ससक्त ।।18 ।।

अर्थ– हे गुणों के निधान ! हे जिनेन्द्र अरनाथ ! जो जनता अत्यन्त हर्षित होती हुई आपके वाक्यों को श्रवण करती है, दान देती है और निदान नहीं चाहती है, दुष्टों से क्रोधित भी वह जनता अपने चित्त को कोप युक्त व संताप युक्त नहीं करती है।

मल्लेर्वचांस्यनिकृतीनि स-भावनानि,
धर्मोपदेशन-कृतीनि सभाऽवनानि।
कुर्वन्तु भव्य-निवहस्य नभोगतानां,
मंक्षु श्रियं कृत-मुदं जन-भोग-तानां ।।19 ।।

मल्लिनाथ के मायाचारी, रहित भावना से परिपूर्ण।
धर्म की शिक्षा देने वाले, सभा के रक्षक वचन सुपूर्ण ।।
शीघ्र ही भव्यों के नर सुख का, करने वाले जो विस्तार।
अरहन्तों की सौख्य प्रदायी, लक्ष्मी दे इच्छित फलकार ।।19 ।।

अर्थ– मल्लिनाथ भगवान के मायाचार रहित, भावना से परिपूर्ण, धर्म की शिक्षा देने वाले तथा सभा रक्षक वचन भव्य समूह के शीघ्र ही मनुष्य के सुखों का विस्तार वाले तीर्थंकरों–अर्हन्तों की आनन्ददायिनी लक्ष्मी को करें।

संस्तूयसे शुभवता मुनि-नायकेन,
नीतो जिनाऽऽशु भवता मुनिनायकेन।

Created by Universal Document Converter

नाथेन-नाथ ! मुनिसुव्रत ! मुक्त-मानां,
मुक्तिं चरन् स मुनिसुव्रतमुक्तमानां ।।20 ।।

गणनायक हे इन्द्रिय जेता !, चक्रेशों के नाथ जिनेश !।
मुनिसुव्रत जिन पुण्यशालियों, मुनियों से स्तुत्य विशेष।।
वह मुनियों का व्रताचार धर, मुक्त जीवों का आदर वान।
कही गई मर्यादा जिसकी, पाए मुक्ती का सोपान।।20।।

अर्थ– हे पूर्ण इन्द्रिय विजेता, हे गणधरों के स्वामी ! हे चक्रवर्तियों के स्वामी तीर्थंकरदेव ! हे मुनिसुव्रत भगवान ! जिस पुण्यशाली मुनीश्वर के द्वारा आप स्तुति किए जाते हैं वह मुनीश्वर शीघ्र ही मुनियों के महाव्रतों का आचरण करता हुआ मुक्तात्माओं का जहाँ आदर है तथा कही गई है। मान–मर्यादा जिसकी, ऐसी मुक्ति को आप द्वारा पहुँचाया जाता है।

चित्तेन मेरु-गिरि-धीर ! दयालुनाऽसि,
सर्वोपकार-कृत धीरदया लुनासि।
इत्थं स्तुतो नमि-मुनि र्ममताऽपसानां,
लक्ष्मीं करोतु मम निर्मम ! तापसानां।।21 ।।

मेरु सम निष्कम्प निर्मोही, सर्वोपकारी बुद्धीवन्त।
तथा दयालू चित्त के द्वारा, हिंसाओं का करते अंत।।
इस प्रकार स्तुत्य हुए श्री, नमि मुनि में ममता परिणाम।
के नाशक तापस लक्ष्मी को, मुझको करते रहें प्रदान।।21 ।।

अर्थ– हे सुमेरु पर्वत के समान निष्कम्प ! हे निर्मोही ! आप सर्वोपकारी बुद्धि वाले हैं। तथा दयालु चित्त के द्वारा हिंसाओं को नष्ट करते हैं इस प्रकार स्तुति किए गए नमि नामक मुनिराज मेरे ममत्व बुद्धि के नाशक महर्षियों की लक्ष्मी को प्रदान करें।

येनोद्यऋगगिरनारगिराविनाऽपि,
नेमिः स्तुतोऽपि पशुनाऽपि निगरा विनाऽपि।

Created by Universal Document Converter

कंदर्प-दर्प-दलनः क्षत-मोह-तानः,
दस्य श्रियो दिशतु दक्षतमोऽहता नः ।।22।।

कामदेव के मद के नाशी, करते मोह वितान विनाश।
अतिशय निपुण नेमि जिन स्तुत, हुए मदन प्रद्युम्न से खास।।
वाणी विरहित पशुधन द्वारा, ऊँचे शिखर श्रेष्ठ गिरनार।
जिस पर स्तुत हमें स्वयं की, लक्ष्मी देवें अपरम्पार।।22।।

अर्थ– कामदेव के घमण्ड को नष्ट करने वाले, मोह के विस्तार को नष्ट करने वाले तथा अतिशय निपुण नेमिनाथ भगवान जिस प्रद्युम्न कामदेव के द्वारा तथा वाणी रहित पशु के द्वारा भी ऊँचे श्रेष्ठ शिखर वाले गिरनार पर्वत पर स्तुति किए गए हैं, हमारे लिए उन स्वयं की अविनाशी लक्ष्मियों को प्रदान करें।

गन्धर्व - यक्ष - नर - किन्नर - दृश्यमानः,
प्रीतिं करिष्यति न किं नर-दृश्यमानः।
भानु - प्रभा - प्रविकसत्कमलोपमायां,
पार्श्वः प्रसूत-जनता-कमलोऽपमायां।।23।।

हुई प्रसूत जनता के लक्ष्मी, जिनसे गर्व रहित अविशेष।
नर किन्नर गंधर्व यक्ष से, दर्शित श्री जिन पार्श्व जिनेश।।
रवि प्रकाश से विकसित कमलों, की उपमावाली सद्दृष्टि।
में क्या माया रहित प्रीति को, नहीं करेंगे जीव सुदृष्टि।।23।।

अर्थ– उत्पन्न हुई है जनता के लक्ष्मी जिनसे, गर्व रहित तथा गन्धर्वों, यक्षों, मनुष्यों व किन्नरों द्वारा दर्शन किए गए पार्श्वनाथ भगवान् सूर्य के प्रकाश में प्रफुल्लित हुए कमलों की उपमा वाली मनुष्यों की दृष्टि में क्या माया रहित प्रीति को नहीं करेंगे?

श्रीवर्द्धमान-वचसा पर-मा-करेण,
रत्नत्रयोत्तम - निधेः परमाऽऽक्रेण।

Created by Universal Document Converter

कुर्वन्ति यानि मुनयोऽजनता हितानि,
वृत्तानि सन्तु सततं जनता-हितानि ।।24 ।।

परम मोक्ष लक्ष्मीकारी शुभ, रत्नत्रय निधि के स्थान।
वर्धमान के वचनों द्वारा, निश्चय से हो जग कल्याण ।।
लोकोत्तर मुनि जिन अहिंसादिक, महाव्रतों का कर आचार।
वह आचार विशद जन-जन का, कल्याणी हो बारम्बार ।।24 ।।

अर्थ- निश्चय से उत्कृष्ट मोक्षरूपी लक्ष्मी को करने वाले तथा रत्नत्रयरूपी उत्तम निधि के उत्कृष्ट उत्पत्ति स्थान ऐसे श्री वर्द्धमान भगवान के वचन द्वारा लोकोत्तर मुनिराज जिन अहिंसादि महाव्रतरूप आचरणों को करते हैं वे आचरण निरन्तर प्रजा का कल्याण करने वाले हों।

वृत्तात्समुल्लसित - चित्त - वचः प्रसूतेः,
श्रीदेवनंदिमुनि - चित्त - वचः प्रसूतेः।
य पाठकोऽल्पतर-जल्प-कृतेस्त्रिसन्ध्यं,
लोकत्रयं समनुरंजयति त्रिसन्ध्यं ।।25 ।।

भक्ति भरे वचनों का सुन्दर, किया गया संक्षेप कथन।
देवनन्दि मुनि की रचना का, चौबिस श्री जिन का स्तवन ।।
जो भव्यात्म पाठ करते हैं, विशद भाव से स्वयं त्रिकाल।
त्रय लोकों को आकर्षित कर, हो जाते हैं जीव निहाल ।।25 ।।

अर्थ- वसंततिलका नामक छन्द से प्रति सुन्दर अन्तरंग वचनों की भक्ति भरे वचनों की उत्पत्ति वाली तथा संक्षेप में कही गई श्री देवनंदी नामक मुनिराज की निर्दोष रचना का इस चतुर्विंशति तीर्थंकरों की स्तुति का जो भव्यात्मा त्रिकाल पाठ करने वाला है। वह तीनों काल में-तीनों संध्याओं में हमेशा तीनों लोकों को भली प्रकार आकर्षित करता है।

Created by Universal Document Converter

(शार्दूलविक्रीडित छंद)

तुष्टिं देशनया जनस्य मनसो येन स्थितं दित्सता,
सर्वं वस्तु-विजानता शमवतायेन क्षता कृच्छता।
भव्याऽऽनंद-करेण येन महती तत्त्व-प्रणीतिः कृता,
तापं हन्तु जिनः स मे शुभधियां ततातः सतामीशिता।।26।।

धर्मोपदेश से जो जन मन के, तुष्टीकारी हुए महान।
शांत स्वभावी सर्व वस्तु को, जाने दुखहर आनन्दवान।।
सम्यक् तत्त्व प्ररूपक सज्जन, पुरुषों के स्वामी निष्पाप।
बुद्धि उत्पादक श्री जिन मेरे, विशद हरें सारे संताप।।26।।

अर्थ– जिनके द्वारा धर्मोपदेश से जनता के मन की प्रसन्नता को प्रदान करते हुए प्रवर्तित हुआ गया, जिन शान्त स्वभावी के द्वारा समस्त वस्तु स्वरूप को जानते हुए दुख दूर किया गया तथा जिन भव्य जीवों को आनंदित करने वाले के द्वारा सम्यक् तत्त्व-प्ररूपण किया गया। सत्पुरुषों के स्वामी और निष्पाप वृद्धि के उत्पादक वे जिनेन्द्र भगवान मेरे संताप को दूर करें।

वीर निर्वाण पच्चीस सौ सैंतालिस शुभ वर्ष।
पद्यानुवाद जो यह किया, पढ़ें सभी धर हर्ष।।
विशद भाव से जो किया, जिनवर का यशगान।
ऋद्धि-सिद्धि सौभाग्य प्रद, है स्तोत्र महान।।

* * *

आचार्य 108 श्री विशदसागरजी महाराज का अर्घ्य

प्रासुक अष्ट द्रव्य हे गुरुवर थाल सजाकर लाये हैं।
महाव्रतों को धारण कर ले मन में भाव बनाये हैं।।
विशद सिंधु के श्री चरणों में अर्घ समर्पित करते हैं।
पद अनर्घ हो प्राप्त हमें गुरु चरणों में सिर धरते हैं।।

ॐ हूँ क्षमामूर्ति आचार्य 108 श्री विशदसागरजी यतिवरेभ्यो: अर्घ्यं निर्व.स्वाहा।

Created by Universal Document Converter

बाहुबली स्तवन

हे कामदेव ! शुभवर्णहरित्सुगात्र !
केनोपमां तव करोमि समोऽपि कश्चेत् ।।
नूनं भवान् खलु भवादृश एव लोके।
तृप्यंति नो जनदृशो मुहुरीक्षमाणाः ।।1 ।।

कामदेव पद भूषित हे जिन ! (सुन्दर), हरित वर्णमय दिव्य शरीर।
करें आपकी उपमा किससे, नहीं आप सम कोई धीर।।
आप समान आप ही निश्चित, सुन्दर इस जग में अतएव।
सुर-नर के दृग तृप्त न होते, पुनः पुनः कर दर्शन देव !।।1 ।।

अर्थ- हे प्रथम कामदेव पद से भूषित ! मंगल स्वरूप मनोहर हरितवर्ण से शोभायमान गात्र को धारण करने वाले हे बाहुबलि भगवन् ! आपके रूप की तुलना किससे करें ? क्योंकि उपमा तो सादृश्य से दी जाती है। और आपके सदृश इस पृथ्वी तल पर कोई है ही नहीं। अतः निश्चय से इस लोक में आप आपके ही समान हैं। इसीलिये मनुष्यों के और देवों के नेत्र पुनः पुनः आप को देखते हुये भी तृप्ति को प्राप्त नहीं होते हैं।

उत्तुङ्गदेह ! भरताधिपजित् ! तव प्राक् ।
शिष्यो बभूव भरतेश्वरचक्ररत्नं ।।
रत्नत्रयं पुनरवाप्य सुसिद्धिचक्रं।
मोहैकजित् ! त्रिभुवनैक गुरुर्बभूव ।।2 ।।

भरताधिप जित् सवा पाँच सौ, उच्च देह धर हे योगीश !।
चक्ररत्न को दास बनाए, बने भरत चक्री जग ईश।।
सिद्धचक्रमय रत्नत्रय शुभ, धारी हुए आप जगदीश।
मोह विजित त्रिभुवन के गुरु, हे बाहुबली ! जी हुए महीष।।2 ।।

अर्थ- हे सवा पाँच सौ धनुष प्रमाण अवगाहना वाले उत्तुङ्गदेह ! हे छह खंड पृथ्वी को जीतने वाले भरत चक्रवर्ती उनको भी जीतने वाले महाशक्तिशालिन्! तीनों युद्धों में हार जाने के बाद भरतेश्वर के द्वारा कोप से छोड़ा गया चक्ररत्न आपकी प्रदक्षिणा देकर शिष्य समान आपके पास स्थित हो गया था। परन्तु आप विरक्त हो उस चक्ररत्न का भी तिरस्कार कर दीक्षित हो गये। पुनः तीनों लोकों में एक छत्र

Created by Universal Document Converter

साम्राज्य स्थापित करने वाले ऐसे महापराक्रमी मोहराज को जीतने वाले हे मोहैकजित् भगवन् ! आप सम्पूर्ण सिद्धियों को करने वाले रत्नत्रय रूपी तीन चक्ररत्नों को प्राप्त कर तीनों लोकों के जीवों को एक अद्वितीय शाश्वत सुखदर्शक त्रिभुवन गुरु बन गये हैं।

हे नाथ ! कर्मवशतो हतशक्तिबुद्धिः।
स्तोतुं तथापि तव भक्तिवशाद् यतेऽहं ।।
भेकोऽपि शक्तिमसमीक्ष्य जवेन भक्त्या।
गच्छन् मृतः सुरपदं ननु किं न वाप्नोत् ।।3 ।।

कर्मोदय से बुद्धिहीन हूँ, शक्ति हीन हूँ हे जिनराज !।
तव भक्ती वश स्तुति करने, उद्यमशील हुआ मैं आज ।।
शक्ति विचारे बिन भक्ती वश, मेढ़क प्रभु की ओर चला।
पथ में मरकर सुरपद पाया, क्या नहिं मेढ़क अहो ! भला ।।3 ।।

अर्थ– हे नाथ ! वीर्यांतराय और ज्ञानावरण कर्म के अत्यल्प क्षयोपशम से मेरी शक्ति और ज्ञान बहुत ही मंद है। फिर भी मैं आपकी भक्ति के वश होकर स्तुति करने में प्रयत्न करता हूँ। क्या एक क्षुद्र मेंढक अपनी शक्ति का विचार न कर भक्ति वश हो दर्शन के लिये जाते हुए मार्ग में ही मरण को प्राप्त कर देवपद को प्राप्त नहीं हुआ ? अर्थात् शक्तिहीन भी भक्तिवश कार्य करते हुए सफलता को प्राप्त करते ही हैं।

आस्तां जिनेन्द्र ! तव संस्तवनं हि तावत्।
नामापि नूनमिह सिद्धरसायनं स्यात् ।।
कामार्थदाय्यभयदायि च देहभाजां।
पीयूषबिंदुरपि तृप्तिकरो न किं वा ।।4 ।।

तव स्तुति की बात दूर है, नाम मंत्र भी हे जिनवर !
सिद्ध रसायन से बढ़कर है, अन्य रसायन हैं नश्वर ।।
अभयदान दायक जग जन को, फल इच्छित जो करे प्रदान।
क्या अमृत की एक बूंद भी, तृप्तीप्रद ना होवे मान ।।4 ।।

अर्थ– हे जिनेन्द्र ! आपकी स्तुति की बात तो दूर ही रहे। आपका नाम भी निश्चय से इस लोक में सिद्ध रसायन स्वरूप हैं। परन्तु लौकिक रसायनें तो क्षणिक नश्वर स्वर्ण आदि वस्तुयें ही प्रदान करती हैं। किन्तु आपका नामरूप रसायन जीवों को

Created by Universal Document Converter

सम्पूर्ण इच्छित पदार्थों को देता है और अभय स्थान को भी प्राप्त करा देता है। अमृत की एक बिंदु भी जगत् में तृप्ति नहीं करती है क्या? अर्थात् करती ही है।

ध्यानस्थिते त्वयि विभो ! शुकवर्णकांतं।
त्वां वीक्ष्य मुक्तिललना छलतो लतानां।।
मन्येऽहमेत्य समवर्णमवेत्य तुष्टा।
आश्लिष्यति स्म रहसि स्थितमत्र मोदात्।।5।।

ध्यान लीन थे विभो ! आप तब, शुक समान थे कांतीमान।
मानो मुक्ति रमा आई हो, छल से लता रूपधर मान।।
हरित वर्ण सम पर्ण समझकर, पाकर के एकांत स्थान।
खड़े हुए प्रभु का आलिंगन, कर संतुष्ट हुई हों मान।।5।।

अर्थ–हे विभो ! जब आप ध्यान में स्थित थे, शुक के समान सुन्दर वर्ण सहित आपको देखकर मुक्तिरमा ही मानों लताओं के छल से आकर और आपको समान वर्ण वाले समझकर संतुष्ट होकर एकांत में स्थित आपको हर्ष से आलिंगन किया था ऐसा मैं समझता हूँ। अर्थात् ब्याह सम्बन्ध क्षत्रिय का क्षत्रिय में, वैश्य का वैश्यवर्ण आदि में जो होता है वह वर्णशंकर जातिशंकर दोष से रहित है, वही आगमानुकूल है। अतः यहाँ पर उत्प्रेक्षालंकार के द्वारा वर्णशंकर आदि महादोष हैं ऐसा ध्वनित किया गया है। सारांश–आप हरित वर्ण के थे। माधवी लतायें भी हरित वर्ण की थीं उस समय आपको वेष्टित करके वह मुक्ति स्त्री के समान प्रतीत होती थीं।

आजन्मजात बहुवैर विकार भावाः ।
सिंह प्रभृत्यखिल जंतु गणा अपीत्थं।
ध्यान प्रभाव वशतस्तव हिंस्रभावं।
त्यक्त्वा मिथः परमशांत-मुपासत त्वां।।6।।

वैरभाव युत जन्मजात भी, शेर हरिण आदिक कई जीव।
जात विरोधी नाग नकुल सब, प्रीति बढ़ाएँ जहाँ अतीव।।
क्रूर भाव को तजते प्राणी, अहो ! ध्यान का रहा प्रभाव।
परम शांत प्रभु की स्तुति से, परम प्रीति का जागे भाव।।6।।

अर्थ–जन्म जातीय वैर सम्बन्ध से क्रूर और विकृत हैं परिणाम जिनके ऐसे- हाथी, सिंह, सर्प, नकुल आदि अखिल वन जंतु भी इस प्रकार से आपके ध्यान के प्रभाव

Created by Universal Document Converter

से अपने-अपने हिंस्र क्रूर भावों को छोड़कर परस्पर में बड़े प्रेम से रहते हुए शांति को प्राप्त हुए परमशांत ऐसे आपकी उपासना कर रहे थे।

ध्यानस्थिते सति सुरासन-कंपमानाः।
जातामुहुः सुरगणाश्चनतिं व्यतन्वन्।।
ध्यानैकधुर्य जिन ! ते हृदि धारकाणां।
कंपीभवति भविनां किल कर्म चौराः।।7।।

आसन कंपित हुए सुरों के, खड़े आप थे ध्यानालीन।
झुककर नमस्कार करते थे, पुनः पुनः सुर ज्ञान प्रवीण।।
अद्वितीय ध्यान धर हे जिन ! तुमको, मन में जो करते धारण।
कर्मचोर उन भव्य जनों के, हों निश्चित ही निष्कारण।।7।।

अर्थ-हे ध्यान में एक अद्वितीय कुशल जिनराज ! जब आप ध्यान में लीन थे उस समय महाध्यान के प्रभाव से देवों के आसन बार-बार कंपित हो जाया करते थे। उसी प्रकार हृदय में धारण करने वाले भव्य जीवों के कर्मरूपी चोर कंपित (शिथिल) हो जाया करते हैं।

संवत्सरैक तनु निश्चल ! शल्यदूर ।
त्वद्ध्यानकृष्ट हृदया महतादरेण।।
त्वं बुद्धिविक्रिय रसौषधि चारणाद्याः।
सर्वर्द्धयोऽपि वृणुतेस्म किमद्भुतं तत्।।8।।

एक वर्ष तक खड़े रहे थे, निश्चल होके शल्य विहीन।
ध्यान से आकर्षित हो मानो, चरण शरण में होके दीन।।
बुद्धि विक्रिया चारण औषधि, आदि ऋद्धियाँ महति महान।
आश्चर्य क्या हे प्रभो ! आपके, शरण में पाईं जो स्थान।।8।।

अर्थ- हे एक वर्ष तक शरीर को निश्चल रखने वाले भुजबलिन् ! हे माया मिथ्या निदान शल्यरहति बाहुबलि भगवन् ! आपके ध्यान के प्रभाव से आकर्षित होकर ही मानों बड़े प्रेम से आपको बुद्धि-ऋद्धि, मनःपर्ययज्ञानादि, विक्रिय ऋद्धि, रस ऋद्धि, सर्वौषधि आदि ऋद्धि तथा चारण ऋद्धि आदि सम्पूर्ण ऋद्धियों ने वरण किया था इसमें आश्चर्य ही क्या है, जबकि मुक्ति रमा भी वरण करने को उत्कंठित हो रही थी।

Created by Universal Document Converter

शाल्यंकुराभ तनु बाहुबलीश ! योगे।
लीनं लताभि रहिभिः परितः सुजुष्टं।।
त्वां वीक्ष्य खेचर रमा बहु विस्मयेन।
भक्त्या निवारणपरा मुहुरेव तत्र।।9।।

शालि के अंकुर सम सुंदर अति, बाहुबली हैं कांतीमान।
भोग लीन प्रभु सर्प लताओं, से वेष्टित थे महिमावान।।
ऐसे प्रभु को देख चकित हो, विद्याधरियाँ विस्मय युक्त।
सर्प लतादिक दूर करें जो, पुनः पुनः हो भक्ति संयुक्त।।9।।

अर्थ- शालि के नूतन अंकुर के समान सुन्दर कांतिवाले बाहुबलि भगवन् ! योग में लीन आपको चारों तरफ से लताओं ने और सर्पों ने वेढ़ लिया था। उस वन में क्रीड़ा के लिये आईं हुईं बहुत-सी विद्याधरियाँ ऐसे योग चक्रेश्वर आपको देखकर आश्चर्यचकित हो जाती थीं पुनः भक्ति से विभोर होकर लताओं और सर्पों को आपके ऊपर से बारंबार हटाया करती थीं।

(अनुष्टुप छंद)

ज्ञान लक्ष्मी घनाश्लेश, प्रभवानन्द नन्दितम्,
निष्ठितार्थ-मजं नौमिं, परत्मान-मव्ययम्।।
प्रशान्तमति गंभीरं, विश्वविद्या कुलगृहम्।
'विशद' शरणं जीयाज्, छ्रीमत् बाहुबली जिनम्।।10।।

ज्ञान लक्ष्मी के प्रभाव से, आनंदित श्री जिन भगवान।
नमस्कार हो जन्मादिक क्षय, को हे अव्यय ! महिमावान।।
हे गंभीर ! प्रशांतमति जिनवर, विश्व विद्यादि के हे कुलगेह !।
बाहुबली जयवंत आप की, 'विशद' शरण हो निःसंदेह।।10।।

अर्थ- जो ज्ञान लक्ष्मी के दृढ़ आलिङ्गन से उत्पन्न आनंद से आनंदित परिपूर्ण प्रयोजनवान् हैं, कृत्कृत्य हैं, अजन्मा हैं और अविनाशी हैं, ऐसे परम पिता परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ। जो प्रशांत अति गंभीर विश्व की समस्त विद्याओं का कुल हैं (अर्थात् व्याकरण, न्याय, छंद, अलंकार, साहित्य, मंत्र-तंत्र-यंत्र, जो ज्योतिष, वैद्यक, निमित्त और मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति आदि) एवं भव्य जीव को एकमात्र अद्वितीय 'विशद' शरण हैं ऐसे श्री बाहुबली जिनेन्द्र जयवंत हों।।

* * *

Created by Universal Document Converter

प्रशस्ति

भारत देश उत्तर प्रदेश में, रहा कानपुर शहर महान।
आनन्दपुरी में सिद्धचक्र शुभ, मिलकर कीन्हें श्रेष्ठ विधान।।
वी.नि. 25 सौ एवं, रहा सैंतालित फाल्गुण मास।
पर्व अढाई में ससंघ का, रहा हमारा वहाँ प्रवास।।
रत्नत्रय यह पंच विंशतिका, रत्नाकर सूरी कृत ग्रन्थ।
पद्यानुवाद किया है पावन, मैं आचार्य रहा निर्ग्रन्थ।।
रही भावना 'विशद' हमारी, पाएँ भव्य जीव सद्ज्ञान।
अनुक्रम से सब कर्म नाशकर, पावें पावन शिव सोपान।।

आचार्य श्री 108 विशदसागरजी महाराज की आरती

(तर्जः- माई री माई मुंडेर पर तेरे बोल रहा कागा.....)

जय-जय गुरुवर भक्त पुकारे, आरति मंगल गावे।
करके आरती विशद गुरु की, जन्म सफल हो जावे।। गुरुवर के चरणों में नमन्...4 मुनिवर के...
ग्राम कुपी में जन्म लिया है, धन्य है इन्दर माता।
नाथूराम जी पिता आपके, छोड़ा जग से नाता।।
सत्य अहिंसा महाव्रती की.....2, महिमा कहीं न जाये।
करके आरती विशद गुरु की, जन्म सफल हो जावे।। गुरुवर के चरणों में नमन्...4 मुनिवर के...
सूरज सा है तेज आपका, नाम रमेश बताया।
बीता बचपन आयी जवानी, जग से मन अकुलाया।।
जग की माया को लखकर के.....2, मन वैराग्य समावे।
करके आरती विशद गुरु की, जन्म सफल हो जावे।। गुरुवर के चरणों में नमन्...4 मुनिवर के...
जैन मुनि की दीक्षा लेकर, करते निज उद्धारा।
विशद सिंधु है नाम आपका, विशद मोक्ष का द्वारा।।
गुरु की भक्ति करने वाला.....2, उभय लोक सुख पावे।
करके आरती विशद गुरु की, जन्म सफल हो जावे।। गुरुवर के चरणों में नमन्...4 मुनिवर के...
धन्य है जीवन, धन्य है तन-मन, गुरुवर यहाँ पधारे।
सगे स्वजन सब छोड़ दिये हैं, आतम रहे निहारे।।
आशीर्वाद हमें दो स्वामी.....2, अनुगामी बन जायें।
करके आरती विशद गुरु की, जन्म सफल हो जावे।।
गुरुवर के चरणों में नमन्...4 मुनिवर के... जय...जय।।

रचयिता : श्रीमती इन्दुमती गुप्ता, श्योपुर

Created by Universal Document Converter

Created by Universal Document Converter